विद्यार्थी-जीवन में सफलता

STUDENTS' SUCCESS IN LIFE

PRICE: 60/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल,
उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

प्रकाशकीय

स्वामी शिवानन्द जी का नाम अध्यात्म-ज्ञान के सम्यक् प्रचार का पर्याय बन गया है। तीन सौ से अधिक पुस्तकों के यशस्वी लेखक के रूप में उन्होंने मानवता की जो अन्यतम सेवा की है, वह आज जग-जाहिर है। अनावश्यक साम्प्रदायिक बन्धनों से मुक्त उनके उपदेशों में जन-मानस को छू लेने की प्रभुता है। सर्व-साधारण के प्रति जागरूक रहते हुए भी वे नवयुवक-समाज के लिए विशेष जागरूक प्रतीत होते थे। १९५० में अपनी अखिल भारत यात्रा में उन्होंने अनेक शिक्षालयों और विश्वविद्यालयों में उपदेश दिये और योगासनादि के प्रदर्शन की व्यवस्था की। आजकल के व्याख्याता की भाँति स्वामी जी सीर्फ इतना कह कर सन्तुष्ट नहीं हो लेते थे कि नवयुवक भावी राष्ट्र के निर्माता हैं-वे तो दिन-रात श्रम करके इन्हें उचित दिशा में मोड़ने का यत्न करते रहे हैं। नवयुवकों का दिशा-निर्धारण उनकी शिक्षा ही करती है। आज देश में जब कि शिक्षा से अध्यात्म-ज्ञान को प्रक्षिप्त करके इसे शुष्क बना दिया गया है, शिवानन्द जी का साहित्य यहाँ पर दैवी वरदान का काम करता है। स्वामी जी से बढ़ कर शायद ही किसी ने नवयुवक-समाज का अपने परामर्श से उन्नयन किया हो। स्वामी जी ने नवयुवक-समाज से यथेष्ठ श्रद्धा प्राप्त की, कारण कि उनके उपदेशों में अहंभाव या महापुरुषत्व का दम्भ नहीं था- वे सेवक और हिताकांक्षी के रूप में कुछ कहते थे। उन्होंने जो कुछ भी कहा, बड़ा प्रभावशाली सिद्ध हुआ और नवयुवक-समाज ने उसे जीवन में उतारने की कोशिश की। स्वामी जी का साहित्य सुन्दर, सौम्य और प्रकाशमान् है, यह दिव्य जीवन का उद्बोधक और अखिल मानव-समाज का दिशा-निर्देशक है।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

भूमिका

शैशवावस्था से ही शिक्षा आरम्भ होनी चाहिए

बच्चों की शिक्षा राष्ट्र-निर्माण का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है; क्योंकि लोकोक्ति है कि बालक जो-कुछ पालने में सीखता है, अपने बचपन में जैसा स्वभाव बना लेता है, वह आजीवन बना रहता है। सदाचारशील तथा दैवी सम्पदाओं से सम्पन्न स्वस्थ, चतुर और बुद्धिमान् नवयुवक और युवती राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हैं, यही नहीं वास्तव में वे राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति हैं। वे नवयुवक और युवतियाँ जिन्हें अपने बचपन में ठीक शिक्षा मिली है, आगे चल कर सुयोग्य और कुलीन सन्तान को जन्म देंगी और उनकी यह सन्तान वयस्क होने पर राष्ट्र की प्रतिष्ठा और सम्मान को उन्नत करेंगी और उसके गौरव को बढ़ायेंगी।

मनुष्य के अन्तस्तल में जो दिव्य पूर्णता है, उसको खोज निकालने की विधि का नाम ही शिक्षा है। सदाचार का विकास ही शिक्षा है और सदाचार ही शक्ति है। सदाचार ही मनुष्य को अमरत्व प्रदान करता है। नन्हें बालक और बालिकाओं में सदाचार का बीज बोना चाहिए; क्योंकि उस समय भूमि उर्वर और कोमल होती है। बाद में यह कार्य बहुत ही दुष्कर हो जाता है; क्योंकि उस समय भूमि कठोर हो जाती है।

स्कूल तथा कालेजों में विद्यार्थी जो ज्ञान अर्जन करते हैं, वह ऐसा होना चाहिए जो उनके तथा दूसरों के जीवन में उपयोगी सिद्ध हो। शिक्षा-संस्थाएँ उपाधि प्रदान करने के कारखाने न बनें। शिक्षा विद्यार्थी को आत्म-निर्भर, स्वावलम्बी, अध्यवसायी तथा सुसभ्य बनने में सहायक सिद्ध होनी चाहिए। वह उनमें आध्यात्मिक विकास के सही मूल्यांकन की भावना भरने वाली हो।

शिक्षा का आरम्भ बचपन से ही होना चाहिए। माँ की लोरी भी दिव्य एवं आत्म-प्रेरक होनी चाहिए जो बच्चों में निर्भयता, मुदिता, शान्ति, निःस्वार्थता और दिव्यता के स्वस्थ आदर्शों का संचार करे। भले ही बच्चा माँ के उन शब्दों के भाव हृदयंगम करने में असमर्थ हो; फिर भी माँ जिस बच्चे को अपने पूर्ण हृदय से प्रेम करती है, उसकी ओर वह एकाग्रचित्त से जो शक्तिशाली विचार प्रवाहित करती है, उसका गम्भीर प्रभाव उस बच्चे के मानसिक गठन पर तथा उसके भावी जीवन और आचार पर पड़ना अवश्यम्भावी है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का पुनर्गठन अध्यापक और छात्र के पारस्परिक सम्बन्ध के आदर्श पर होना चाहिए तथा समय की गति के अनुसार उसमें आवश्यक सुधार होने चाहिए। प्रत्येक बीस विद्यार्थी के लिए एक शिक्षक होना चाहिए और विद्यार्थियों के साथ शिक्षक का सम्पर्क बहुत ही घनिष्ठ और सीधा होना चाहिए। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। साम्प्रदायिक भावनाओं से असम्पृक्त आध्यात्मिक शिक्षा ही शिक्षा का आधार होनी चाहिए। इसके साथ ही उन विषयों का सामंजस्यपूर्ण समन्वय होना चाहिए जिन्हें वरिष्ठ शिक्षाशास्त्रियों की समिति पाठ्यक्रम में रखना आवश्यक समझे। शिक्षक का प्रथम कर्तव्य बालकों में उनके पाठ्य-विषय के

प्रति रुचि उत्पन्न करना होना चाहिए; क्योंकि प्रायः यह देखा गया है कि स्कूलों में बालक और बालिकाओं को जिन विषयों की शिक्षा दी जाती है, वे उनके भावी जीवन में बहुत ही कम उपयोगी सिद्ध होते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि उन्होंने स्कूल में जो-कुछ पढ़ा है, वह स्कूल छोड़ते समय ही तुरन्त भुला दिया जाता है। किसी विषय की उच्चतर शिक्षा के लिए विद्यार्थियों का चुनाव रुचि और योग्यता के अनुसार करना चाहिए और उन्हें उस विषय की योग्यता प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

बच्चों की शिक्षा में उनकी माता का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। बाल-शिक्षा केन्द्रों की महिला अध्यापिकाओं का कार्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। महिलाएँ बच्चों के लिए जो-कुछ कर सकती हैं, वह पुरुष नहीं कर सकते। स्त्री ही प्रथम गुरु है और भगवान् ने उसे अपना यह भाग अदा करने के लिए बहुत ही उपयुक्त बनाया है। बच्चों की शिक्षा के लिए उसका हृदय पूर्ण विकसित होता है। वह बच्चों के हृदय से बातचीत कर सकती है। बच्चा भी उसकी शिक्षाओं को सुगमता से ग्रहण कर आत्मसात् कर लेता है। बच्चा माँ में अधिक विश्वास रखता है। माँ बच्चे के हृदय को जीत लेती है। हृदय से दिये हुए हृदय के पाठ बच्चे के व्यक्तित्व में गम्भीरता से अंकित हो जाते हैं।

निःस्वार्थ सेवाभावी सुसंस्कृत एवं शिक्षित महिलाओं को अध्यापन का व्यवसाय अपनाना चाहिए। जिन महिलाओं का दृष्टिकोण स्वतन्त्र है तथा जो समाज-सेवा करना चाहती हैं, उनके लिए अध्यापन-व्यवसाय में विशेष क्षेत्र है। वहाँ वे वैसे ही सफल हो सकती हैं जैसे जीवन के अन्य क्षेत्रों में पुरुष। वे अपने हृदय का विकास कर विश्वात्म-चेतना प्राप्त कर सकती हैं। वे संसार के सभी बच्चों को अपना बच्चा मान सकती हैं। अब समय बदल चुका है। आज संसार को ऐसी महिलाओं की आवश्यकता है जिनमें आत्म-समर्पण की भावना हो, और हो उनमें पुरुष-सा शौर्य एवं साहस। जिन महिलाओं में पुरुषोचित साहस और दृढ़ता तथा नारी-सुलभ करुणा और सूझबूझ हैं, वे अद्‌भुत कार्य कर सकती हैं और योगिनी के रूप में विभासित हो सकती हैं।

शिक्षा और राष्ट्र-निर्माण

ऋषियों तथा ज्ञानियों की भूमि भारत अभी भी अज्ञान के दलदल में फँसी हुई है। जनता में निरक्षरता अधिक है। प्राध्यापक, शिक्षक तथा विद्यार्थियों को चाहिए कि वे छुट्टियों में गाँवों में जा कर उनको शिक्षित बनायें। समृद्ध व्यक्तियों को उन्हें पर्याप्त सहायता देनी चाहिए। यूरोप तथा अमरीका के साथ भारत की तुलना तो कीजिए। यहाँ पर निरक्षरों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है।

लड़के तथा लड़कियों के लिए राष्ट्रीय पाठशाला, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय खुलने चाहिए। उनको सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए; तभी राष्ट्रीय भावना का जागरण हो सकता है। जो शिक्षा आपको धर्म तथा सत्य के मार्ग में प्रवृत्त करती है, जो आपके चरित्र का निर्माण करती है, जो आपको मुक्ति, पूर्णता तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति में सहायता देती है तथा साथ-ही-साथ सच्चाई के साथ जीविकोपार्जन के लिए योग्य बनाती है, वही सच्ची शिक्षा है।

सेवा समिति तथा सांस्कृतिक संस्थाएँ देश के हर भाग में स्थापित होनी चाहिए। इनको सुचारु रूप से संचालित करना चाहिए। इन संस्थाओं के द्वारा आत्मा तथा हृदय की सेवा करना मनुष्य-मात्र का कर्तव्य है। तब उसका हृदय शीघ्र ही शुद्ध हो जायेगा।

संसार की सबसे अधिक अद्भुत मशीन है मनुष्य का शरीर। इसमें अनेक प्रणाली, अंग और भाग हैं। यदि सभी प्रणाली, अंग और भाग मिल कर काम करते हैं, यदि सभी भाग स्वस्थ अवस्था में हैं, तब मनुष्य स्वास्थ्य-सुख का उपभोग करता है। यदि किसी एक भी प्रणाली, अंग अथवा भाग में विकार उत्पन्न हुआ, यदि उनमें सामंजस्य नहीं है, तब मनुष्य रोगी हो जाता है। इसी भाँति समाज अथवा राष्ट्र विभिन्न जातियों तथा व्यक्तियों के द्वारा बना हुआ है। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह अपना कर्तव्य सुचारुरूपेण पालन करे। वह सबल तथा स्वस्थ हो जिससे कि उसके अपने कर्तव्य का पालन हो सके। अन्यथा राष्ट्र अथवा समाज दुर्बल हो जाता है और उसका पतन तथा ह्रास होने लगता है।

केवल जवानी के जोश से ही काम न चलेगा। आपके अन्दर सच्चा प्रेम और सेवा-भाव होना चाहिए। आपके कण-कण में शुद्ध प्रेम का स्पन्दन होना चाहिए। यदि आपके अन्दर इस प्रकार की भावना का अभाव है तो मानव-सेवा के द्वारा अधिकांश रूप में इसको विकसित कीजिए। महान् ऋषियों और सन्तों के जीवन को बारम्बार पढ़िए। इन लोगों ने धर्म के लिए अपने जीवन को अर्पित कर दिया था। कुछ वर्ष तक किसी अच्छे नेता के अधीन रह कर काम कीजिए। उनकी सेवा कीजिए। उनका सम्मान कीजिए। उनकी आज्ञा का पालन कीजिए। आज्ञाकारिता त्याग से बढ़ कर है। आप उनके सद्गुणों तथा दिव्य चेतना को अपने अन्दर लायेंगे। स्वयं नेता बनने का प्रयास न कीजिए। यदि हर व्यक्ति नेता बनना चाहेगा तथा हर व्यक्ति आदेश देना चाहेगा, तो आन्दोलन कभी सफल नहीं हो सकता। सेवा करना सीखिए। आप देश तथा धर्म की सच्ची सेवा कर सकते हैं।

बाल-विवाह एक बहुत बड़ी सामाजिक बुराई है। बच्चे ही बच्चे पैदा कर रहे हैं। भारत शक्तिहीन लोगों से भरा पड़ा है। विधवाओं की संख्या खेदजनक है। बाल-विवाह बन्द होने चाहिए और दहेज प्रथा पर कठोर प्रतिबन्ध लगने चाहिए।

जगत् को स्वस्थ माताओं, स्वस्थ तथा सबल लड़के और लड़कियों की आवश्यकता है। आज हम भारत में क्या देख रहे हैं। जिस देश में भीष्म, द्रोण, अर्जुन, अश्वत्थामा, कृप, परशुराम तथा अनेक वीर योद्धा हुए थे, वही देश आज दुर्बलों, पुरुषत्वहीन व्यक्तियों से भरा हुआ है। स्वास्थ्य के नियम की उपेक्षा तथा अवहेलना हो रही है। राष्ट्र कष्ट भोग रहा है। जगत् को अनेकानेक साहसी आध्यात्मिक शूरवीरों की, सदाचारशील सैनिकों की आवश्यकता है जो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह-इन पाँच सद्गुणों से सम्पन्न हों। जिनमें स्वास्थ्य और बल हो, जिनमें उपर्युक्त पाँचों सद्गुण विद्यमान हों तथा जिनको आत्म-ज्ञान प्राप्त हो, वे ही सबका सच्चा कल्याण-साधन कर सकते हैं।

हमारे ग्रैजुएट (स्नातक) युवक व्यवसाय तथा कृषि-पक्ष की अवहेलना न करें। उन्हें अपने व्यक्तिगत और सामुदायिक प्रयासों से अपने खेतों की उत्पादिका शक्ति में वृद्धि लानी चाहिए। इस दिशा में, कृषि तथा व्यवसाय के क्षेत्र में, उनको बहुत-सा काम करना है। दफ्तर में केवल बाबू बनने के स्थान में वे अपनी स्वतन्त्र जीविका चला सकते हैं। सुन्दर स्वास्थ्य और बल के लिए आवश्यक शुद्ध दूध तथा मक्खन आदि वस्तुएँ उपलब्ध करा कर वे जनता की सेवा कर सकते हैं।

देशी पदार्थों को ही उपयोग में ला कर उन्हें कुटीर-उद्योग की उन्नति करनी चाहिए। इससे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। सुखी और शान्तिमय जीवन के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता अपरिहार्य है।

मानव-जीवन के विविध पहलुओं का सम्पूर्ण विकास ही शिक्षा है। जीवन के हर क्षेत्र में पूर्णता लाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं और स्तरों पर सार्वभौमिक नियम को बाह्य तथा अन्तर्जगत् में अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रदान करना ही सच्ची शिक्षा की जाँच है।

-स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

प्रकाशकीय 2
भूमिका 3

जीवन का ध्येय

१. जीवन का ध्येय 8
२. जीवन का लक्ष्य 10
३. आत्म-संशय 10
४. संकोच तथा लज्जा 11
५. समाजपटुता 11
६. व्यक्तित्व 12

संकल्प-साधना

१. संकल्प-साधना 13
२. विचार-साधना 15

दुर्गुण

१. क्रोध 18
२. भय 20
३. घृणा 21
४. निराशावाद 21
५. विश्वासान्धता 22
७. असहिष्णुता 22
८. आत्महीनता की भावना 22
९. असावधानी 22
१०. अनिश्चय 23
११. कृपणता 23
१२. दुर्गुणों का दमन 24

सद्‌गुण

१. सत्य-सम्भाषण 26
२. नियम और समय की पाबन्दी 27
३. यथाकाल-व्यवस्था 28
४. निष्कपटता और ईमानदारी 29
५. धैर्य और उद्योग 29
६. आत्म-निर्भरता 30
७. प्रत्युत्पन्नमति 30
८. सन्तोष 31
९. चरित्र-निर्माण 31

शिक्षा

१. शिक्षा 33
२. आधुनिक जीवन 34
३. विवाह 35
४. काम-वासना 36
५. ब्रह्मचर्य 37
६. धर्म और वेदान्त 38
७. शान्ति 39
८. निःस्वार्थ सेवा 40
९. उपदेश या अनुशीलन की शक्ति 41
१०. विद्यार्थियों को उपदेश 43
११. विद्यार्थियों की दैनन्दिनी 44

स्वास्थ्य और व्यायाम

१. स्वास्थ्य और व्यायाम 45
२. पद्मासन 46
३. सर्वांगासन 46
४. मत्स्यासन 47
५. पश्चिमोत्तानासन 48
६. वज्रासन 48
७. भुजंगासन 48
८. हलासन 49
९. अर्धमत्स्येन्द्रासन 49
१०. शिथिलीकरण 50
११. सुखपूर्वक प्राणायाम 50

१२. शीतली प्राणायाम 50
१३. भस्त्रिका 51
१४. स्वास्थ्य और बल 51
१५. दिव्य आह्वान 52

परिशिष्ट

१. विद्यार्थी-जीवन का महत्त्व 53
२. आध्यात्मिक शिक्षा का महत्त्व 53
३. चरित्र का महत्त्व 55
४. जीवन मूल्यवान् है 56
५. सेवा के लिए जीवन बितायें 56
६. सेवा उन्नत बनाती है 58
७. कर्मयोग की महिमा 60
८. दिव्य सन्देश 61
९. औपनिषदिक संस्कृति 61
१०. विद्यार्थियों को सदुपदेश 62
११. अर्जनीय गुण 68
१२. त्याज्य दुर्गुण 70

प्रथम अध्याय

जीवन का ध्येय

१. जीवन का ध्येय

मानव-जीवन का ध्येय आत्म-साक्षात्कार अथवा परम शान्ति, सुख, आनन्द तथा अमरत्व की प्राप्ति है। शान्ति एक जड़ अकर्मण्यावस्था नहीं है और न तो यह मन की अभावावस्था ही है। यह तो आध्यात्मिक उपलब्धि की धनात्मक अवस्था है। यह आपका केन्द्र, आदर्श तथा ध्येय है। सुख और शाश्वत आनन्द की संवाहिका शान्ति की शक्ति अपूर्व ही है।

हलचल, उपद्रव, संघर्ष तथा विवादों का अभाव ही शान्ति नहीं है। हो सकता है कि आप पूर्ण विषम परिस्थिति में पड़े हुए हों। आप विपत्तियों, कष्टों, क्लेशों, कठिनाइयों तथा शोकों में निमग्न रहते हुए भी आन्तरिक सुख और शान्ति का उपभोग कर सकते हैं। हाँ, इसके लिए

आपको अपनी इन्द्रियों को समेटना होगा, मन को शान्त करना होगा तथा मन के मल का प्रक्षालन करना होगा।

शान्ति अन्तर में ही प्राप्त की जा सकती है। निश्चय ही शान्ति को आप बाह्य पदार्थों में प्राप्त नहीं कर सकते। धन, स्त्री, सन्तान, सम्पत्ति, प्रासाद इत्यादि आपको शाश्वत शान्ति प्रदान नहीं कर सकते। उफनती हुई वृत्तियों को स्तब्ध कर, कामनाओं और तृष्णाओं का दमन कर उस शान्ति को प्राप्त कीजिए जो सारे अवबोधों का अतिक्रमण करती है। इसमें संस्थित हो जाने पर आप शोक, हानि अथवा असफलता तथा असामंजस्यपूर्ण वातावरण से विचलित नहीं होंगे। आप जीवन की सभी कठिनाइयों तथा आपत्तियों पर विजय प्राप्त करेंगे और अपने सभी उद्योगों में सफल होंगे।

क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा- ये सभी शान्ति के शत्रु हैं। शुभेच्छा, सहयोग, करुणा, अहिंसा, क्षमा, सन्तोष, विश्व-प्रेम तथा भद्रता का अर्जन कीजिए। उसके लिए प्रार्थना कीजिए जिसने आपको हानि पहुँचायी है। उसके प्रति तथा समस्त संसार के प्रति शान्ति एवं शुभेच्छा की विचार-तरंगों को प्रेषित कीजिए।

यदि आप स्वार्थ, लोभ तथा अभिमान का उन्मूलन कर लेंगे तो प्रकृति आपके लिए काम करेगी। वैयक्तिक इच्छा सामष्टिक इच्छा के साथ एक बन जायेगी। आपका लक्ष्य ब्रह्माण्ड के लक्ष्य के साथ एक बन जायेगा। आपके लिए सब-कुछ सुलभ हो जायेगा। आपके मार्ग में कोई बाधा न रहेगी। आप चिन्ता, उद्वेग, उत्तरदायित्व तथा भय से मुक्त रहेंगे।

धनी जनों के पास अपार सम्पत्ति होती है। उनके पास भोग-विलास के सभी साधन होते हैं। उनके पास सुन्दर मोटर कार, भव्य प्रासाद तथा अनेक सेवक होते हैं। वे विविध प्रकार के पौष्टिक तथा सुस्वादु भोजन खाते हैं तथा ग्रीष्मकाल में पर्वतीय भागों में निवास करते हैं। फिर भी उनके मन में शान्ति नहीं, क्योंकि उनके भीतर समता नहीं है। लोभ, स्वार्थ, अहंकार, काम, मद, घृणा, क्रोध, भय और शोक के कारण उनके हृदय में संघर्ष चलता रहता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर ही शक्ति रखता है। वह दूसरों को प्रभावित कर सकता है। वह लाखों व्यक्तियों में शान्ति तथा सुख को विकीर्ण कर सकता है। वह दूसरों को प्रबुद्ध बना सकता है। वह दूर-स्थित मित्रों में भी अपने सशक्त आत्म-प्रेरक लाभदायी विचारों को भर सकता है। वह ईश्वर की ही प्रतिमूर्ति है। जीवन-हीन पदार्थ है ही नहीं। प्रत्येक वस्तु में जीवन है। प्रस्तर के टुकड़े में भी जीवन है। पदार्थ जीवन से पूर्ण है। पुष्पों के साथ मुसकराइए तथा वृक्षों की कोपलों तथा शाखाओं से हस्तालिंगन कीजिए। हरी घास के साथ बातें कीजिए। पक्षियों तथा मृगों के साथ खेलिए। इन्द्रधनुष, पवन, नक्षत्र, सूर्य, कलस्विनी सरिताओं तथा सागर की चंचल लहरों के साथ प्रेमालाप कीजिए। अपने पड़ोसी, कुत्ता, बिल्ली, गाय, मनुष्य, वृक्ष और फूल-सभी के साथ मित्रता स्थापित कीजिए; तभी आपका जीवन विशाल, निष्कलंक तथा पूर्ण होगा। यह अवस्था अनिर्वचनीय है। आप श्रेष्ठतम शान्ति, सुख तथा आनन्द का अनुभव करेंगे।

हे करुणामय आराध्य देव ! हमें शाश्वत शान्ति, पवित्रता तथा शक्ति प्रदान कीजिए जिससे हम अपने देश तथा समस्त मानव जाति की सेवा करें! हम सब संसार में मंगल तथा एकता के हेतु आत्म-त्याग की भावना से एक-साथ मिल कर शान्तिपूर्वक कार्य करें! हममें प्रज्ञापूर्ण क्षमाशील

हृदय, विशाल सहन-शक्ति तथा यथा-व्यवस्था का गुण हो! हमें वह नेत्र प्रदान कीजिए जिससे हम सर्वत्र आत्मा की एकता के ही दर्शन करें!

२. जीवन का लक्ष्य

बहुसंख्यक लोगों का, यहाँ तक कि शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों का भी जीवन में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। फल यह होता है कि वे लोग इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, जैसे लकड़ी का कुन्दा समुद्र में चपल लहरों के साथ निरवलम्ब इधर-उधर भटकता है। उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है। बहुत से विद्यार्थी अपनी बी. ए. और एम. ए. की पढ़ायी समाप्त कर लेते हैं; पर आगे क्या करना होगा, इसका उन्हें पता ही नहीं होता। अपनी प्रकृति के अनुसार किसी अच्छे उद्यम को चुनने की शक्ति उनमें नहीं है जिससे वे अपने जीवन को समृद्ध तथा सफल बना सकें। अतः वे साहसिक कार्य अथवा किसी ऐसे कार्य को, जिसमें कुशलता, चतुराई तथा कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता हो, करने में अयोग्य सिद्ध होते हैं। इस भाँति उनका समय नष्ट होता जाता है और सारा जीवन उदासी, निराशा और दुःख में बीत जाता है। उनके पास शक्ति है, बुद्धि भी है; पर कोई निश्चित लक्ष्य या ध्येय नहीं, कोई अपना आदर्श नहीं और न जीवन का कोई कार्यक्रम ही है। इसलिए उनका जीवन असफलता का प्रतीक-सा बन जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति को प्रथमतः अपने जीवन के लक्ष्य का उचित ज्ञान होना चाहिए। उसके अनन्तर कार्य करने का एक ऐसा ढंग निकालना चाहिए, जो अपने ध्येय की सफलता के अनुकूल हो। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कठिन परिश्रम तो अवश्य करना ही होगा, साथ-साथ अपना आदर्श भी निश्चित होना चाहिए और जीवन में हर क्षण उसी आदर्श के अनुसार कर्म करना चाहिए। आप अपने लक्ष्य को अभी प्राप्त कर लें अथवा लड़खड़ाते हुए पग से चल कर दश वर्ष बाद प्राप्त करें; किन्तु आपका एक आदर्श और लक्ष्य अवश्य होना चाहिए, तभी आप संकल्प का विकास कर सकते हैं।

३. आत्म-संशय

बहुत से लोग सदा आत्म-संशयी बने रहते हैं। उनमें आत्म-विश्वास का अभाव होता है। वे शक्ति, योग्यता तथा अन्य गुणों से सुसम्पन्न रहते हुए भी संशयात्मा रहते हैं। अपनी योग्यताओं और क्षमताओं पर उन्हें पूरा विश्वास नहीं होता कि सफलता मिल भी सकेगी या नहीं। यह एक ऐसी दुर्बलता है जिसके कारण मनुष्य अपने सभी प्रयासों में असफल रहता है। बहुत से लोगों में भाषण की शक्ति और योग्यता रहती है। भाषा तथा भाव-दोनों पर उनका पूर्ण अधिकार होता है; परन्तु उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि वे व्याख्यान दे सकेंगे अथवा नहीं। उनका यही विचार होता है कि वे व्याख्यान नहीं दे सकेंगे। जब उनके मन में यह असत् विचार आता है तो उनका हृदय दहल जाता है, वे थर-थर काँपने लगते हैं और मंच पर से नीचे उतर आते हैं। आपमें कार्य करने की क्षमता तो होनी ही चाहिए; परन्तु उसके साथ ही आपमें यह पूर्ण विश्वास भी होना चाहिए कि आप अपने प्रयास में अवश्य ही सफल होंगे। कुछ लोगों में योग्यता कम होती है। उनके पास जोरदार मसाला भी नहीं होता। फिर भी वे अपने श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध-सा कर देते हैं। आत्म-विश्वास का

ऐसा प्रभाव है। आत्म-विश्वास एक प्रकार की शक्ति है। यह इच्छा-शक्ति का विकास करता है। आत्म-विश्वास आधी सफलता ही है। आत्म-विश्वासी व्यक्ति सदा ही सफल होते हैं।

४. संकोच तथा लज्जा

संकोच-रूपी निर्बलता को यदि जीवन की सफलता के मार्ग का रोड़ा कहा जाये, तो अनुचित न होगा। संकोच या लज्जा और कुछ नहीं, यह केवल कायरता अथवा भय का साधारण रूप है। छोटी आयु के सभी बालकों में यह दुर्बलता पायी जाती है। लज्जा स्त्रीत्व-प्रधान गुण है। यह व्यक्ति में तभी अपना अधिकार स्थापित करती है, जब वह कुछ गलत काम कर बैठा हो, अथवा गलत मार्ग पर चल रहा हो। संकोची बालक अपने विचारों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं कर पाते। वे किसी अनजान व्यक्ति से खुल कर मिल नहीं सकते। सुशीलता का लज्जा से कोई सम्बन्ध नहीं है। सुशीलता तो सतीत्व या शुद्धता का प्रतिरूप है। जब चरित्र निर्मल हो जाता है, जब स्वभाव में नैतिकता आ जाती है तो सुशीलता का प्रकटीकरण होता है। लज्जा एक बड़ी बाधा है। इसका निराकरण साहस के विकास से करना चाहिए।

५. समाजपटुता

समाजपटुता या बेधड़क स्वभाव उस व्यक्ति में पाया जाता है, जिसमें नाम के लिए भी कर्म-संकोच नहीं होता। जो लोग लज्जालु होते हैं, वे समाजपटु नहीं कहे जाते। समाजपटु व्यक्ति सदा अग्रगामी रहता है। हर जगह हवा की तरह पहुँच जाना उसका स्वभाव है। कुछ डाक्टर और वकील धनोपार्जन नहीं कर पाते हैं, केवल इसलिए कि उनमें समाज के साथ चलने की कला का अभाव होता है। निःसन्देह वे बुद्धिमान् और चतुर भी हैं; किन्तु उनका दुर्भाग्य है, जो वे संकोच के कारण बेधड़क स्वभाव से कार्य नहीं कर पाते हैं। समाजपटु व्यक्ति खोजपूर्ण होता है। वह निर्भीक तथा साहसी होता है।

समाजपटु व्यक्ति दूसरों के हृदय पर अधिकार पाने और उसको प्रभावित करने की कला में निपुण होता है। दूसरों की आवश्यकता के अनुसार सेवा करके वह उनका विश्वासपात्र बन जाता है। यदि उसके पास काम भी नहीं रहता तो वह अपने-आप किसी-न-किसी कार्य की सृष्टि कर लेता है। चुपचाप बैठे रहना मानो उसके लिए सम्भव है ही नहीं। कभी भी उसे देखिए, वह योजनाएँ बनाता रहेगा। भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले व्यक्तियों के अनुकूल अपने को ढालने में वह कुशल होता है।

यूरोपियनों में हमने इस गुण को प्रचुरता से देखा है। अँगरेज लोग भारत में पहले-पहल व्यापार करने के लिए आये थे और उन्होंने उसके लिए ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी खोली थी, किन्तु धीरे-धीरे समाजपटुता के कारण ही वे इस भूमि के शासक बन गये। जापान के लोग भी इस विद्या में निपुण हैं। यही कारण है कि दूसरे विश्व युद्ध के बावजूद भी आज वे अपने पाँवों पर उठ कर खड़े हो गये हैं। वे वाणिज्य तथा व्यवसाय में संसार के बड़े-से-बड़े राष्ट्रों से लोहा लेने की क्षमता रखते हैं। समाजपटुता सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक गुण है।

६. व्यक्तित्व

जिस माध्यम द्वारा एक व्यक्ति को दूसरे से अलग-अलग जाना जाता है, उसे व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के चरित्र, प्रतिभा, सद्‌गुण, सदाचार, बौद्धिक विकास, प्रभावशाली चरित्र, मधुर तथा ओजपूर्ण वाणी का समावेश है। इन सब गुणों या विशेषताओं के समूह को किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व कहा जाता है। यदि केवल शारीरिक लक्षणों को ले कर ही व्यक्तित्व का निर्धारण किया जाये, तो वह अपूर्ण ही रहेगा।

यदि हम किसी व्यक्ति को दूसरे पर अपना प्रभाव डालता हुआ देखते हैं, तो यही कहते हैं कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व तेजस्वी और आकर्षक है। पूर्ण सिद्ध योगी तथा पूर्ण प्रतिष्ठित ज्ञानी इस संसार में सबसे महान् व्यक्तित्व है। ऐसे व्यक्ति का शारीरिक गठन साधारण पुरुषों के समान भी हो सकता है। उसकी आकृति असुन्दर भी हो सकती है। उसके वस्त्र फटे-पुराने हों; किन्तु इतना सब-कुछ होने पर भी वह महान् व्यक्तित्व-सम्पन्न होता है। वह एक महात्मा है। यम और नियम के अभ्यास से जिस व्यक्ति ने नैतिक उन्नति कर ली है, उसका व्यक्तित्व तेजस्वी हो जाता है। वह लाखों को प्रभावित कर सकता है। धनी व्यक्तियों का व्यक्तित्व भी प्रभावुक होता है। उनके व्यक्तित्व में प्रभावशालिता का कारण धन की शक्ति है।

रही चरित्र की बात। चरित्र से जिस व्यक्तित्व की प्राप्ति होती है, वह व्यक्तित्व ठोस और शक्तिशाली होता है। चरित्रवान् व्यक्ति जहाँ-कहीं रहे, सम्मान-पात्र बन कर रहते हैं। जो व्यक्ति पवित्रमना, सत्यशील, सत्यवादी, दयालु, उदार-हृदय है, वह दूसरों को शीघ्र ही प्रभावित करता और दूसरों के आदर का पात्र भी जल्दी ही बन जाता है। सात्त्विक गुण होने से मनुष्य दिव्य व्यक्तित्वशाली हो जाता है। जो व्यक्ति सत्यवादी और ब्रह्मचारी हो, समाज में उसकी देवतुल्य प्रतिष्ठा होती है। ऐसा व्यक्ति एक ही शब्द क्यों न मुँह से निकाले, उसका अपना अलग, विशिष्ट और महान् प्रभाव तथा आकर्षण होता है। यहाँ पर यह याद रखिए-यदि आप अपने व्यक्तित्व को उच्च, तेजस्वी, प्रभावशाली, आकर्षक बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम चरित्र का निर्माण कीजिए। चरित्र-निर्माण में सबसे पहले और सबसे आवश्यक है ब्रह्मचर्य। इसे मूल ही क्यों न मान लिया जाये ? इसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं हो सकता।

व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इसके लिए दिव्य गुणों का अभ्यास अनिवार्य है। हतप्रभ और चिन्तित व्यक्ति किसी को भी प्रभावित नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति जो निराशावादी, उदास और हतप्रभ है, समाज के लिए रोग-संक्रामक कीटाणुओं के समान है। दूसरे के साथ कैसे मिलना और कैसे व्यवहार करना चाहिए-इसका ज्ञान होना आवश्यक है। धीरे से बोलना चाहिए। मन को प्रियकर ही बोलना चाहिए। सज्जनता, मिलनसार स्वभाव और नेक आदत का विकास करना चाहिए तथा दूसरों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। नम्रता वह सद्‌गुण है जो दूसरों के हृदय को अपने वश में कर लेता है। इसके साथ यदि सुन्दर आकृति हो, मधुर वाणी हो, कला और विज्ञान का अच्छा ज्ञान हो तो व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाते हैं।

जब किसी व्यक्ति से मिलना हो तो मिलने का ढंग जान लेना चाहिए। किस प्रकार बातें की जाती हैं और कैसा व्यवहार किया जाता है–यह सब अच्छी तरह जान लेना चाहिए। व्यवहारकुशलता

एक अनिवार्य सद्गुण है। दम्भी, हठी, आत्मन्य व्यक्ति का व्यक्तित्व कभी भी तेजस्वी तथा आकर्षक नहीं हो सकता। सभी उसे नापसन्द करते हैं।

स्वभाव सदा खुशदिल होना चाहिए। चेहरे पर मुसकान और आनन्द खिले रहने चाहिए। इससे व्यक्तित्व का विकास होता है। सदा प्रसन्न-चित्त रहोगे, तो बड़े लोग आपको अच्छा मानेंगे। किन्तु प्रसन्न-चित्त और सतत मुसकान के साथ-साथ मिलनसारिता तथा विनीत स्वभाव भी होना चाहिए। यदि यह गुण हुए, तो मिलने वाले व्यक्ति को प्रभावित किया जा सकता है। उस व्यक्ति को जो-कुछ कहना है, धीरे-धीरे अच्छी तरह सोच-विचार और याद करके कहो। कहते समय जल्दबाजी और अव्यवस्थित होने के कारण कुछ और न कह जाओ। सोच-समझ कर धीरे-धीरे बात करोगे, तो वह व्यक्ति ध्यानपूर्वक आपकी बातें सुनेगा। बातचीत करते समय उत्तेजित न हो जायें और न घबरायें ही। विवाह-बारात में जिस प्रकार गैस बत्ती की रोशनी का वाहक सन्नद्ध खड़ा रहता है, उसी प्रकार अकड़ कर खड़े न रहिए। तात्पर्य यह है कि बातें करते समय हाव-भाव इस प्रकार से व्यवस्थित होने चाहिए कि सुनने वाले का हृदय आपके व्यवहार से मोहित हो जाये।

यदि व्यक्तित्व प्रभावुक है तो समझ लीजिए कि वह आपकी स्थायी सम्पत्ति है। यदि आप इसे पाने के लिए कृतकर्म हो जायें तो सफलता के यशभागी बनेंगे। तेजस्वी व्यक्तित्व के द्वारा नाम और यश, धन और सफलता के फूलों का मुकुट प्राप्त कीजिए।

द्वितीय अध्याय

संकल्प-साधना

१. संकल्प-साधना

विद्यार्थियों को अपने संकल्प की उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। आत्म-बल को ही संकल्प कहा जाता है। संकल्प का शुद्ध और अप्रतिहत अभ्यास किया जाये, तो अद्भुत कार्य भी सिद्ध कर लिये जा सकते हैं। बलवती इच्छा वाले व्यक्ति के लिए इस संसार में कोई भी प्राप्तव्य असम्भव नहीं है। वासना से संकल्प अशुद्ध और निर्बल हो जाता है। एक-एक इच्छा यदि वश में कर ली गयी, तो संकल्प बन जाती है। काम-शक्ति, मांसल-शक्ति, क्रोधादि शक्तियों पर जब अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है, तो वे संकल्प में विलीन हो जाती हैं। इच्छाएँ जितनी कम हों, संकल्प उतना ही बलवान् होता है। मनुष्य के अन्दर जितने प्रकार की मानसिक शक्तियाँ हैं यथा निर्णय-शक्ति, स्मृति-शक्ति, प्रज्ञा, धारणा-शक्ति, विवेक-शक्ति, अनुमान-शक्ति, प्रतिभिज्ञा-शक्ति-ये सभी संकल्प-शक्ति के काम करने पर पलक मारते ही काम करने लग जाती हैं।

ध्यान का नियमित अभ्यास, सहिष्णुता, घृणा, अप्रसन्नता और चिड़चिड़ाहट का दमन, विपत्तियों में धैर्य, तपस्या, प्रकृति-विजय, तितिक्षा, दृढ़ता तथा सत्याग्रह-ये सब संकल्प के विकास

को सुगम बनाते हैं। धैर्यपूर्वक सबकी बातें सुननी चाहिए। इससे संकल्प का विकास होता है तथा दूसरों के हृदय को जीता जा सकता है।

विषम परिस्थितियों की शिकायत कभी न कीजिए। जहाँ-कहीं आप रहें और जहाँ-कहीं आप जायें, अपने लिए अनुकूल मानसिक जगत् का निर्माण कीजिए। सुख और सुविधाओं के उपलब्ध होने से आप मजबूत नहीं बन सकेंगे। विषम और अनुपयुक्त वातावरण में यदि आप जा पड़ें, तो वहाँ से आप भाग निकलने का प्रयत्न न कीजिए। भगवान् ने आपकी त्वरित उन्नति के लिए ही आपको वहाँ रख छोड़ा है। अतः सभी परिस्थितियों का सदुपयोग कीजिए। किसी भी वस्तु से अपने मन को उद्विग्न न होने दीजिए। इससे आपकी संकल्प-शक्ति का विकास होगा। किसी भी स्थान में और किसी भी अवस्था में अपने को प्रसन्न रखने की चेष्टा कीजिए। आपके व्यक्तित्व में इससे बल और तेज उतरेगा।

मन की एकाग्रता का अभ्यास संकल्प की उन्नति में अति-सहायक है। मन का क्या स्वभाव है-इसका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लीजिए। मन किस तरह इधर-उधर घूमता है और किस तरह अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर दिया करता है- यह सब भली-भाँति हृदयंगम कर लीजिए। मन के चलायमान स्वभाव को वश में करने के लिए आसान और प्रभावकारी तरीकों को खोज निकालना होगा। व्यर्थ की बातचीत सदा के लिए त्याग देनी चाहिए। सभी को समय के मूल्य का ज्ञान होना चाहिए। संकल्प में तेज तभी निखरेगा, जब समय का उचित उपयोग किया जाये। व्यवहार और दृढ़ता, लगन और ध्यान, धैर्य और अप्रतिहत प्रयत्न, विश्वास और स्वावलम्बन आपको अपने सभी प्रयासों में सफलता प्राप्त करायेंगे।

आपको अपने संकल्पों का व्यवहार योग्यतानुसार करना चाहिए; अन्यथा संकल्प क्षीण हो जायेगा, आप हतोत्साह हो जायेंगे। अपना दैनिक नियम अथवा कार्य-व्यवस्था अपनी योग्यता के अनुसार बना लीजिए और उसका सम्पादन नित्यप्रति सावधानी से कीजिए। अपने कार्यक्रम में पहले-पहल कुछ ही विषयों को सम्मिलित कीजिए। यदि आप अपने कार्यक्रम को अनेकों विषयों से भर देंगे, तो न उसे निभा सकेंगे और न लगन के साथ दिलचस्पी ही ले सकेंगे। आपका उत्साह क्षीण होता जायेगा। शक्ति तितर-बितर हो जायेगी। अतः आपने जो कुछ करने का निश्चय किया है, उसका अक्षरशः पालन प्रतिदिन किया जाना चाहिए।

विचारों की अधिकता संकल्पित कार्यों में बाधा पहुँचाती है। इससे भ्रान्ति, संशय और दीर्घसूत्रता का उदय होता है। संकल्प की तेजस्विता में ढीलापन आ जाता है। अतः यह आवश्यक है कि कुछ समय के लिए विचार करो और तभी निर्णय करो। इसमें अनावश्यक विलम्ब नहीं करना चाहिए। कभी-कभी सोचते तो हैं, पर कर नहीं पाते। उचित विचार और उचित अनुभवों के अभाव में ही यह हुआ करता है। अतः उचित रीति से सोचना चाहिए और उचित अनुभव ही करने चाहिए; तभी संकल्प की सफलता अनिवार्य है। किन्तु केवल संकल्प ही किसी वस्तु की प्राप्ति में सफल नहीं होता। संकल्प के साथ निश्चित उद्देश्य को भी जोड़ना होगा। इच्छा या कामना तो मानस-सरोवर में एक छोटी लहर-सी है; परन्तु संकल्प वह शक्ति है जो इच्छा को कार्यरूप में परिणत कर देती है। संकल्प निश्चय करने की शक्ति है।

जो मनुष्य संकल्प-विकास की चेष्टा कर रहा है, उसे सदा मस्तिष्क को शान्त रखना चाहिए। सभी परिस्थितियों में अपने मन का सन्तुलन कायम रखना चाहिए। मन को शिक्षित तथा

अनुशासित बनाना चाहिए। जो व्यक्ति मन को सदा सन्तुलित रखता है तथा जिसका संकल्प तेजस्वी है, वह सभी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त करेगा।

अनुद्विग्न मन, समभाव, प्रसन्नता, आन्तरिक बल, कार्य-सम्पादन की क्षमता, प्रभावुक व्यक्तित्व, सभी उद्योगों में सफलता, ओजपूर्ण मुखमण्डल, निर्भयता आदि लक्षणों से पता चलता है कि संकल्पोन्नति हो रही है।

२. विचार-साधना

इस मानसिक कारखाने में अनिश्चित और नाना प्रकार के विचार आते हैं और चले जाते हैं। उन विचारों में न तो कोई क्रम है और न एकता ही। न तो उनमें कोई ताल है और न उनका कोई कारण ही। न उनमें किसी प्रकार का मेल या संगठन है, न तरीका और न शिष्टाचार। सभी विचार व्यर्थ, गोलमोल और अस्त-व्यस्त हैं। विचारों में स्पष्टता नहीं है। आप किसी एक विषय को नियमित और क्रमबद्ध रूप से दो मिनट के लिए भी नहीं सोच सकते हैं। आपको विचारों और मानसिक क्षेत्र के नियमों का ज्ञान ही नहीं है। आपके अन्दर पाशविकता का संग्रह है। विषयी मन में प्रवेश करने के लिए सभी प्रकार के कामुक विचार आपस में लड़ रहे हैं और एक विचार दूसरे विचार पर विजय पाने की चेष्टा में सतत प्रयत्नशील है। इन्द्रियाँ अपने-अपने विचारों को मन में घुसाना चाहती हैं।

आँखें सुन्दर दृश्य देखना चाहती हैं। कान संगीत का आनन्द लेना चाहते हैं। अधिकांश लोगों के मन में अशुद्ध, विषयी, घृणापूर्ण, द्वेषमय और वीभत्स विचारों का साम्राज्य है। वे दिव्य विचारों को एक क्षण के लिए भी अन्दर प्रवेश करने का अवसर नहीं देते। उनके मन का ढाँचा ही इस प्रकार का है कि मानसिक शक्ति विषय-वासना की ओर ही दौड़ती है।

प्रत्येक व्यक्ति का सोचने, समझने और काम करने का अपना-अपना तरीका है। प्रत्येक व्यक्ति के विचार और समझ में अन्तर होता है। यही कारण है कि प्रायः मित्रों में अनबन हो जाया करती है। कामुक विचार, घृणा की भावना, द्वेष और स्वार्थ के विचार मन में विकारों का रूप धारण कर लेते हैं, जिनके कारण बुद्धि और समझ में विकार आ जाता है, स्मरण-शक्ति का ह्रास होने लगता है और मन में भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

विचार एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक जाते और पहुँचते हैं। विचारों से मनुष्य प्रभावित होता है। शक्तिपूर्ण विचार वाला व्यक्ति निर्बल विचार वाले व्यक्ति को जल्दी प्रभावित कर सकता है। मानसिक संक्रमण द्वारा योगी लोग संसार के किसी भी हिस्से के किसी भी व्यक्ति के पास अपने विचार पहुँचा सकते हैं। मानसिक संक्रमण प्राचीन योगियों की विद्युत् वेग से शब्द या विचार भेजने की क्रिया है।

व्यक्ति के मानसिक कारखाने से क्रोध या घृणा का विचार लोगों की ओर बाण-सन्धान करता है, व्यक्ति को हानि पहुँचाता है, विचार-जगत् में विरोध और फूट फैलाता है और फिर भेजने वाले के पास ही लौटता है और उसको भी चोट पहुँचाता है। यदि मनुष्य विचार की शक्ति और उसके प्रभाव को समझ ले तो वह अपने विचारों के निर्माण में बहुत ही सावधान हो जायेगा। अच्छा मनुष्य यदि अपने मित्र से दूर भी रहता है, तो वह अपने मित्र को अच्छे विचारों द्वारा

सहायता पहुँचा सकता है। सच तो यह है कि अपने अन्दर किसी भी दुर्विचार को प्रश्रय नहीं देना चाहिए। सदा अपने विचारों का निरीक्षण कर, व्यर्थ और न्यून विचारों को दूर हटाया जाये और मानसिक शक्ति की सुरक्षा की जाये। व्यर्थ की चिन्ता से शक्ति ही नष्ट होती है।

आपको अवश्य ही मानसिक संयोग, सम्बन्ध और क्रमिक नियमों का ज्ञान रखना चाहिए। जब आप किसी एक विषय के सम्बन्ध में सोच रहे हों, तो दूसरे विचार या विचारों को मन में घुसने न दीजिए। जब आप गुलाब के फूल के सम्बन्ध में सोचते हों, तो केवल गुलाब के फूलों के विषय में सोचते जाइए। किसी इतर विचार को मन में आने ही न दीजिए। तात्पर्य यह है कि एक ही विचार में पूर्णतया दत्तचित्त रहिए। सदा सुन्दर पवित्र विचारों को प्रश्रय दीजिए। विचारों की उच्छृंखलता को नष्ट कीजिए।

स्मृति का विकास अत्यन्त आवश्यक कार्य है। स्मृति उन्नत होने से भगवद्-साक्षात्कार में भी सहायता मिलती है। स्मृति-हीन व्यक्ति अपने प्रयास में सदा असफल रहता है। भुलक्कड़ व्यक्ति बार-बार भारी भूलें करता है। स्मृति-सम्पन्न विद्यार्थी सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता है। जिसकी स्मरण-शक्ति तीव्र है, जो चीजों को बहुत दिनों तक याद रख सकता है, वह अपने सभी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त करता है, उसका व्यवसाय सफलतापूर्वक चलता है। स्मृति का नवमांश बुद्धि है।

स्मृति का विकास करने के लिए अधीन सचेतन मन के कार्यों का ज्ञान होना आवश्यक है। अधीन सचेतन मन में ही अधिकांश मानसिक कार्यों का प्रतिपादन होता है। प्राचीन काल में संस्कृत के विद्वान् वेदों को मुखाग्र कर लेते थे। शिक्षा की उस गुरुकुलीय प्रणाली में एक विशिष्ट सौन्दर्य था; वह सौन्दर्य था-स्मृति-शक्ति को अप्रत्याशित सीमा तक विकसित करने की क्षमता। गुरुकुलीय प्रणाली के आधार पर शिक्षा देने से विद्यार्थी की स्मृति-प्रतिभा को पूर्ण बल मिलता है। इस दृष्टिकोण से आज के विश्वविद्यालय के छात्र प्राचीन विद्यार्थी-समुदाय की बराबरी नहीं कर सकते।

स्मृति-प्रतिभा के विकास के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। खान-पान में सुचर्या का पालन और इन्द्रियों का संयम धारणा-शक्ति के विकास में अति-आवश्यक समझा जाता है। वीर्य, बुद्धि तथा चित्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वीर्य के रूप में जीवन-शक्ति के पतन हो जाने से स्मृति का लोप होने लगता है। आज के स्कूल तथा कालेज के नवयुवक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के महत्त्व को नहीं समझते हैं। वे अविद्या के अन्धकार में भटकते रहते हैं। उनका समय उपन्यास पढ़ने में ही व्यतीत हो जाता है। उनके मानस-पटल नग्न चित्रों तथा अश्लील प्रसंगों से भरे रहते हैं। अनेक मार्गों से उनकी विषय-वासना उभरती रहती है। वे मनमाना भोजन करते हैं। भोजन का मन और शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है–यह तथ्य उनकी समझ में आता ही नहीं। यही कारण है, जिससे वे लोग जीवन में असफलता पाते हैं, निराश तथा दुःखी हो कर अन्धकारमय जीवन व्यतीत करते हैं।

रुचि और एकाग्रता से स्मृति का विकास होता है। डाक्टरों को चिकित्सा-कोष में उल्लिखित औषधियों का खूब स्मरण रहता है; क्योंकि वे रोगों की चिकित्सा में पर्याप्त दिलचस्पी लेते हैं। किन्तु राजनीति के विषय को याद रखना उनके लिए सम्भव नहीं; क्योंकि इस ओर उनकी रुचि नहीं है। वकील को ही देखिए, वह न्याय के सभी विधानों को याद रखता है। किन्तु उससे क्रिकेट मैच की बात पूछिए, वह कुछ भी नहीं बतला सकेगा; क्योंकि इस ओर उसकी दिलचस्पी नहीं है।

जिस विषय को आप याद रखना चाहते हैं, उसमें रुचि पैदा करने का प्रयत्न कीजिए, तब स्मृति स्वयं उस विषय का प्रकाशन करेगी। दूसरी बात यह है कि सभी विषयों को याद रखने के लिए उन सभी विषयों में रुचि उत्पन्न करनी होगी और लगभग सभी का साधारण ज्ञान भी प्राप्त करना होगा। प्रत्येक के मन में अद्‌भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति बनने की महती आकांक्षा होनी चाहिए। आप भी प्रतिभाशाली बनने का प्रयास करें। शक्तिशालिनी स्मरण-शक्ति, तेजस्वी संकल्प तथा धारणा और ध्यान के नियमित अभ्यास से आप निश्चय ही प्रतिभाशाली व्यक्ति बन जायेंगे।

स्वस्थ मनुष्य की स्मरण-शक्ति अच्छी होगी। दुबले-पतले और कोमल शरीर वाले मनुष्य की स्मृति खराब होगी। स्वस्थ शरीर स्मृति की उन्नति में अपना सहयोग देता है। इसलिए उचित भोजन, व्यायाम और विश्राम से उत्तम स्वास्थ्य, साहस और वीर्य-शक्ति की प्राप्ति कीजिए। वे मनुष्य वास्तव में बहुत ही भाग्यशाली हैं, जो अपनी स्मृति का विकास करते हैं। वे इहलौकिक सफलता के साथ-साथ भगवद्-साक्षात्कार भी प्राप्त करते हैं; क्योंकि भगवान् की स्मृति बनाये रखना उनके लिए सुगम होता है। लोग प्रायः बहुत असावधान रहा करते हैं। उनमें महान् वस्तुओं को सीखने और ज्ञान के संचय करने की रुचि नहीं रहती है। हमारे देश में करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं, जो अपना नाम तक नहीं लिख सकते हैं। भारत, जो बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली ऋषियों और प्रबुद्ध साधुओं का देश रहा है, आज अमरीका तथा अन्य देशों की तुलना में अज्ञान से पूर्ण भरा हुआ है। लन्दन और पेरिस का एक साधारण बालक, जो गलियों में झाड़ू लगाता तथा जूतों पर पालिश करता है, राजनीति से खूब परिचित रहता है, अखबार पढ़ता है और बहुत से सार्वजनिक विषयों पर बुद्धिमत्तापूर्वक बहस कर सकता है। अतः वे देश सभ्य तथा उन्नत हैं। भारत के बहुसंख्यक लोग अज्ञान और अन्धकार के दलदल में फँसे हुए हैं। इसका मूल कारण असावधानी, अभिरुचियों का अभाव तथा उदासीनता है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए योग्य डाक्टर या वकील या सफल व्यापारी बनने के लिए नेत्रों और कर्णों को बहुत सीमा तक विकसित करना होगा। अन्धा या गूँगा या बहरा व्यक्ति समाज का अभिशाप ही नहीं, मृतक भी है। ज्ञान की प्राप्ति कहो या धन की-दोनों के लिए आँखों, कानों और वाणी का अवलम्बन चाहिए। इन्द्रियाँ ही ज्ञान और धन-संचय करने के लिए आयतन मानी जाती हैं।

राह चलते समय बहुत सतर्क रहना चाहिए। रास्ते में जो-कुछ सुनते हो, देखते या पढ़ते हो, याद रखने की चेष्टा करते जाओ। इस प्रकार निरीक्षण-शक्ति का विकास भी होता रहेगा। बहुत ही सावधान रहिए। ध्यान से निरीक्षण में सहायता मिलती है। उत्कण्ठा की शक्तियों को भी कार्य में परिणत कीजिए। उत्कण्ठा कुछ ही दिनों के उपरान्त इच्छा के रूप में बदल जायेगी। रुचि और ध्यान स्वतः आ जायेंगे। यदि कोई बात उपयोगी तथा रोचक है, तो उसे अपनी दैनन्दिनी में नोट कर लीजिए। समय-समय पर दैनन्दिनी के पृष्ठों को अवश्य दुहराते रहिए।

तृतीय अध्याय

दुर्गुण

१. क्रोध

रजोगुण तथा तमोगुण का प्राबल्य होने पर मानस-सरोवर में जिस वृत्ति का प्रादुर्भाव होता है, उसी का नाम क्रोध है। जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अप्रसन्न होता है, तब अन्तःकरण से क्रोध की भावना उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में यह इच्छा या काम-वासना का ही रूपान्तर है। जिस प्रकार दूध का रूपान्तर दही में हो जाता है, उसी प्रकार इच्छा ही क्रोध का रूप धारण कर लेती है। यह शान्ति, ज्ञान और भक्ति का प्रबल शत्रु है। सभी प्रकार की बुराइयाँ तथा सारे दुर्गुण क्रोध से ही उत्पन्न होते हैं। जब व्यक्ति की इच्छा पूरी नहीं होती और जब कोई उस इच्छा की पूर्ति के मार्ग में रोड़ा बन कर खड़ा हो जाता है, तो क्रोध का आवेश व्यक्ति की रग-रग को प्रभावित कर देता है। इच्छा क्रोध के रूप में बदल जाती है। क्रोधावेश द्वारा प्रभावित हो जाने पर वह हर प्रकार के नृशंसात्मक कार्य करता है। उसकी स्मृति का लोप हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और प्रतिभा कुण्ठित। क्रोधावेश में मनुष्य हत्या करता है। भावुकता और उद्रेक से वह पागल-सा हो जाता है। क्रोध आ जाने पर व्यक्ति मुँह से क्या-क्या नहीं निकालता, क्या-क्या अपशब्द नहीं बोलता ? वह जो-कुछ चाहता है, कर बैठता है। एक कटु शब्द अन्त में युद्ध और मारपीट की नौबत ले आता है। वह उस समय अपनी विचार-शक्ति खो बैठता है; क्योंकि वह क्रोध के वश में होता है।

जल-भुन जाना, आग-बबूला होना, आवेश, चिढ़ जाना, दिमाग का गरम होना-ये सब क्रोध के रूपान्तर हैं। प्रत्येक की तीव्रता विशेष अनुपात को ले कर होती है। जब एक व्यक्ति दूसरे को सुधारने के लिए क्रोध प्रकट करता है, तो उसमें स्वार्थ का पुट नहीं होता, अतः उसे उचित क्रोध कहा जाता है। मान लीजिए, कोई व्यक्ति किसी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार करते हुए लोगों द्वारा रोका जाता है, उस समय उन लोगों को जो क्रोध आता है, उसे रोष कहा जाता है। यह बुरा नहीं है। केवल स्वार्थ-सहित और लालचजन्य क्रोध अनुचित है। कभी-कभी अध्यापक को अपने विद्यार्थी को ठीक मार्ग पर लाने के लिए थोड़ा क्रोध करना पड़ता है। अन्दर से तो वह शान्त रहता है, पर बाहर से केवल विद्यार्थी के कल्याणार्थ क्रोधित। यह अनुचित नहीं है। उसके लिए ऐसा करना आवश्यक है। उसके अन्तःकरण पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। पर यह सावधानी रखनी चाहिए कि वह क्रोध देर तक न रहे, अन्यथा उसका अंकुर अन्तःकरण में जम जायेगा। जिस

प्रकार समुद्र की लहरें आती और विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार सुधार-साधन के रूप में क्रोध आ भी जाये, तो उसको तुरन्त रोक देना चाहिए।

जरा-जरा-सी बातों के लिए यदि क्रोध आ जाता है, तो मानसिक दुर्बलता के लक्षण प्रत्यक्ष जान लीजिए। जब कोई व्यक्ति आपका अपमान करता है, आपको गालियाँ देता है तथा आपके वस्त्र भी खोल देता है और यदि आप फिर भी शान्त और निर्लिप्त रह सके, तो जान लीजिए कि आपकी आन्तरिक शक्ति प्रबल है; क्योंकि आत्म-नियन्त्रण और आत्म-संयम मानसिक सबलता के सूचक हैं। जो जल्दी-जल्दी आपे से बाहर हो जाता है, वह सदा ही अन्याय-पथ का अनुसरण करता है और उद्रेकों तथा भावनाओं की धारा में बहने लगता है।

बार-बार दोहराने से क्रोध को बल मिलता है। यदि तत्क्षण ही उसका दमन कर दिया जाये तो व्यक्ति को मानसिक शक्ति उपलब्ध होती है। जब क्रोध-वासना को वश में कर लिया जाता है, तो वह आध्यात्मिक शक्ति के रूप में त्रिलोकविजयिनी शक्ति बन जाती है। क्रोध करने से शक्ति का अपव्यय होता है। क्रोध से स्नायविक केन्द्र व्यथित हो जाते हैं; आँखें लाल, शरीर संकुचित, हाथ और पाँव काँपने लगते हैं। क्रोध से भरे हुए व्यक्ति को वश में करना अति-दुष्कर है। तत्काल के लिए उसमें शक्ति का केन्द्रीयकरण होता है तथा वह बहुत तेजस्वी हो जाता है। किन्तु बाद में उसकी प्रतिक्रिया होती है और वह निराश-सा हो जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार सभी रोग क्रोध के ही रूप-रूपान्तर हैं। एक बार क्रोध आ जाने से उसकी प्रतिक्रिया को टालने में महीनों लग जाते हैं।

वीर्य-क्षय की अतिशयता क्रोध का कारण होती है। काम-वासना मूल है, तो क्रोध उसका तना। अतः पहले मूल का उन्मूलन करना होगा। कामोन्मूलन करने से क्रोध का तना अपने-आप गिर जायेगा। बहुधा देखा गया है कि कामी व्यक्ति ही जल्दी-जल्दी आपे से बाहर हो जाता है। ब्रह्मचारी को क्रोध पीड़ित नहीं कर सकता। उसका मन सदा शान्त रहता है।

इसका मूल कारण खोजने पर तह में केवल अज्ञान और अहंकार ही मिलेगा। क्षमा, प्रेम, शान्ति, करुणा और मित्र-भाव से क्रोध का दमन किया जा सकता है। इनका प्रयोग करते ही क्रोध का वेग कम होने लगता है। क्रोध पर विजय पाने का अर्थ है-काम पर विजय पाना। क्रोध पर विजय पाने से मन पर विजय हुई मानी जाती है। मनुष्य कब क्रोध के आवेश में आ जायेगा, यह कह सकना कठिन है। साधारण-सी बात के लिए मनुष्य क्रोध के दुर्दम्य आवेश में आ जाता है। जब क्रोध गम्भीर रूप धारण करता है, तो उसका दमन दुःसाध्य हो जाता है। इसलिए हमें चाहिए कि आरम्भ में ही, जब क्रोध चित्त में बीज के रूप में हो, उसका दमन कर दिया जाये। बड़ी सावधानी से मन पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए। ज्यों-ही मन में क्रोध के आविर्भाव के लक्षण प्रकट हों, त्यों-ही उसे रोक देना चाहिए। प्रारम्भ में तो नहीं, परन्तु कुछ समय के बाद अभ्यास हो जाने पर क्रोध का दमन आसानी से किया जा सकता है। सावधान तथा सतर्क रहिए।

जब कभी यह प्रतीत होने लगे कि क्रोध आने वाला है, उसी समय बोलना बन्द कर मौन धारण कर लीजिए। प्रतिदिन एक या दो घण्टे मौन का अभ्यास कीजिए। सदा मधुर और अच्छे शब्दों का प्रयोग कीजिए। तर्क भले ही प्रबल हो, किन्तु शब्द तो मृदुल होने ही चाहिए। इसके विपरीत यदि शब्दों का चयन अच्छा नहीं किया गया, तो कभी भी झगड़े की आशंका बनी रहती है। सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा तलवार-जैसी होती है। यदि देखो कि क्रोध पर विजय

पाने की सम्भावना नहीं है, तो तुरन्त स्थान से हट जाइए। खूब दूर तक घूम आइए। कुछ ठण्ढा जल तुरन्त पी लीजिए। इससे शरीर और मन को शीतलता पहुँचती है। सबसे अच्छा तो यही है कि अपने क्रोध का कारण खोजिए और उसे दूर करने का प्रयत्न कीजिए। यदि कोई व्यक्ति गाली देता है, तो आप क्रोधित हो जाते हैं। आपको क्यों क्रोध आता है, जब वह आपको 'कुत्ता' या 'गधा' कह कर सम्बोधित करता है? उसके कहने से क्या आपके पूँछ निकल आयी या चार पाँव निकल आये? तब आप एक छोटी-सी बात के लिए क्यों दिमाग गरम करते हैं? इस प्रकार क्रमिक अभ्यास से आपमें मानसिक शक्ति का विकास होगा और एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब आप किसी भी प्रकार के वातावरण से प्रभावित न होंगे। किसी प्रकार का कठोर या अश्लील सम्बोधन आपको प्रभावित नहीं कर पायेगा। यदि कोई व्यक्ति आपसे कहे कि अमुक व्यक्ति आपकी निन्दा कर रहा था, तो आप उस पर किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं देंगे। आप उसे हँस कर टाल देंगे। कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब क्रोध को शीघ्र प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे अवसरों पर भी शान्त रहना चाहिए। भूख तथा रोगग्रस्त अवस्था में क्रोध का आना आसान होता है। कुछ दुःख आ जाने, व्यापार में हानि पहुँचने या किसी चीज के खो जाने से लोग छोटी-छोटी बातों पर भी झुंझला उठते हैं। धूम्रपान, मांसाहार और मद्यपान व्यक्ति को चिड़चिड़ा बना देते हैं। अपनी संगति का ध्यान भी अवश्य रखिए। दुराचारी व्यक्ति का संग न कीजिए। कम बोलिए और कम मिलिए। सबसे प्रेम कीजिए और सबके प्रति दयालु बनिए।

२. भय

भय, चिन्ता और क्रोध मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों का ह्रास करते, उसे दुर्बल बनाते और अकाल ही काल-कवलित बनाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी भय से भयभीत रहता है। भय अनेक रूप धारण कर प्रकट होता है। नेपाली सिपाही तलवार, भाले, बरछी या गोलियों से नहीं डरते; परन्तु बिच्छू से बहुत डरते हैं। शिकारी जंगल में शेर या व्याघ्र से भय नहीं खाता; किन्तु शल्य-चिकित्सक के छोटे से अस्त्र से काँप उठता है। सीमान्त प्रदेश के निवासी चाकू से नहीं डरते, शल्य-चिकित्सक बिना क्लोरोफार्म के उनकी अँतड़ियों की चीर-फाड़ कर सकता है; किन्तु साँप से बेहद डरते हैं। कुछ लोग भूतों से भय खाते हैं। अधिकांश जनता सामाजिक आलोचनाओं से भय खाती है। कुछ लोगों को रोग का भय बना रहता है। स्वस्थतम व्यक्ति को भी किसी-न-किसी रोग की आशंका बनी रहती है।

राजा को शत्रुओं का, पण्डितों को बादी का, सुन्दरी को वृद्धावस्था का, वकील को न्यायाधीश का और असामी का, विद्यार्थी को अपने शिक्षक का, मेढक को सर्प का और सर्प को नेवले का भय सदा बना रहता है।

भय की मात्रा होती है; जैसे साधारण भय, बुजदिल स्वभाव, लज्जा, चौक, आशंका और तीव्र भय। भय तीव्र हुआ तो शरीर से पसीना टपकने लगता है, मल-मूत्र का स्खलन तीव्रता से होता है, मन की अवस्था काष्ठवत् हो जाती है, तीव्र आघात पहुँचता है और मनुष्य निश्चेष्ट-सा हो जाता है। चेहरा पीला पड़ जाता है और आँखों में कालापन छा जाता है। कभी-कभी हृदय की गति बन्द हो जाने से मृत्यु भी हो जाती है।

अभिभावकों और शिक्षकों को बचपन से ही बालकों में निर्भयता के संस्कार डालने चाहिए। चूँकि उनका मन लचकदार होता है, इच्छानुसार बनाने का प्रयत्न बचपन से ही करना चाहिए। उन्हें

महाभारत की कहानियाँ पढ़ने के लिए देनी चाहिए, जिनमें भीम, अर्जुन तथा अन्य योद्धाओं के शौर्य का वर्णन है। ब्रह्मचर्य प्रचुर शक्ति और साहस प्रदान करता है।

३. घृणा

संसार में आज सर्वत्र ही घृणा का प्रभाव छा रहा है। सच्चे प्रेम का अभाव है। पुत्र पिता से घृणा करता है; अतः विष का प्रयोग कर पिता का प्राणान्त कर पैत्रिक सम्पत्ति को शीघ्र हथियाना चाहता है। स्त्री अपने पति को विष दे कर मार डालती है और दूसरे धनी नवयुवक से विवाह कर लेती है। भाई-भाई अदालतों में मुकदमा लड़ रहे हैं। बालकों को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ मानव-सेवा की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।

विश्व-प्रेम की आवश्यकता पर पूरा बल देना चाहिए, तभी शुद्ध प्रेम का विकास तथा घृणा का उन्मूलन सम्भव हो सकता है। आपको सच्चे हृदय से घृणा के निराकरण का प्रयास करना चाहिए। प्रेम का विकास कर घृणा, ईर्ष्या तथा असहिष्णुता पर विजय प्राप्त कीजिए। व्यक्ति, सम्प्रदाय तथा राष्ट्र में अशान्ति तथा उनके पारस्परिक कलह का कारण केवल घृणा और ईर्ष्या की पिशाच-वृत्ति ही है। ईर्ष्यालु व्यक्ति जब अपने पड़ोसी को समृद्ध होते देखता है, तो उसका दिल जलने लगता है। यही अवस्था राष्ट्रों और विभिन्न जातियों की है। ईर्ष्या का परिहार महानता और विशाल चरित्र से किया जाता है। नम्रता के विकास से घमण्ड का परिहार करना चाहिए। निष्कपटता तथा सरलता के विकास से घमण्ड का तथा क्षमा, प्रेम और सेवा-भाव के विकास से क्रोध का उन्मूलन करना चाहिए।

४. निराशावाद

निराशावाद मन की वह अवस्था है जिसमें वह किसी भी वस्तु के सदात्मक पक्ष को भूल कर उसके अन्यतम अवगुणों को ही देखा करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार इस संसार में दुःख ही दुःख है; इसमें सुख का लेश-मात्र भी नहीं है। यह जीवन का नैराश्यपूर्ण दृष्टिकोण है। बुद्धमत निराशावाद का प्रतिपादन करता है। वेदान्ती यद्यपि संसार को असत्य बतलाते हैं, फिर भी वे पूर्ण आशावादी हैं। सांसारिक क्षुद्र भोगों से मनुष्य को हटाने तथा अमर आत्मा के जीवन के प्रति उनकी रुचि उत्पन्न करने के लिए ही वैराग्य का उपदेश दिया जाता है। आशावाद निराशावाद की प्रतिपक्षी भावना है। आशावादी व्यक्ति प्रत्येक वस्तु के सत्य पक्ष को ही पहले देखेगा। निराशावादी मनुष्य सदा उदास, निर्बल, सुस्त तथा चिन्तित रहता है। प्रसन्नता का तो उसे पता ही नहीं। निराशावाद एक संक्रामक रोग है। जिस घर में एक मनुष्य भी निराशावादी हुआ, वह घर सारे-का-सारा निराशावादी हो जाता है। निराशावादी व्यक्ति को इस संसार में सफलता नहीं मिल सकती। सबल आशावादी बन कर आनन्द का उपभोग कीजिए। जीवन की प्रत्येक अवस्था में खुशदिल रहिए।

५. विश्वासान्धता

कुछ लोगों का विश्वास अन्धा होता है। वह जल्दी ही दूसरों द्वारा छले जाते हैं। बिना सोचे-विचारे किसी बात पर विश्वास करना ठीक नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव को अच्छी तरह पहचान कर ही विश्वासपात्रता निश्चित करनी चाहिए। व्यक्ति का स्वभाव, गुण, पूर्व-जीवन-वृत्त और रूप से चलता रहता है। सन्देह की अधिकता से सदा अशान्ति, कलह और द्वन्द्व का सूत्रपात ही हुआ करता है। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ दिन तक कसौटी पर खरा उतारने की चेष्टा कीजिए। न तो अन्धविश्वासी बनिए और न संशयात्मा ही। अतः मध्यम मार्ग को चुनिए।

७. असहिष्णुता

असहिष्णुता कई प्रकार की होती है; जैसे धार्मिक असहिष्णुता, साम्प्रदायिक असहिष्णुता आदि। जो भी हो, असहिष्णुता मनुष्य की नीच-वृत्ति का नग्न-नृत्य है। इस संसार में सब झगड़ों और अशान्ति की जड़ असहिष्णुता है। अँगरेज लोग आयरलैण्ड या जर्मनी के निवासियों को पसन्द नहीं करते। एक हिन्दू मुसलमान के प्रति असहिष्णु रहता है और मुसलमान हिन्दू के प्रति । आर्यसमाजी और सनातनी भी आपस में असहिष्णुता का व्यवहार करते हैं, एक की बातें दूसरे को सहन नहीं होतीं। यह सब अज्ञान के कारण होता है। यह सब क्षुद्र विभेद काल्पनिक है। दिल खोलिए, उसे उदार बनाइए। सबको गले लगाइए। सबको अपने प्रेम का भागी बनाइए। सबसे प्रेम कीजिए। सबकी सेवा कीजिए। सबमें भगवान् के दर्शन कीजिए। सबसे मिलिए। अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन कीजिए। मुक्त-सिद्धान्ती तथा उदार विचारवादी बनिए। मनुष्य-मनुष्य के बीच खड़ी हुई दीवाल को तोड़ डालिए।

८. आत्महीनता की भावना

बड़प्पन और क्षुद्रता की भावना सर्वथा मन पर ही अवलम्बित है। हीन चरित्र मनुष्य भी, यदि वह प्रयत्न, संघर्ष और सद्गुणों का अर्जन करता है, तो गौरवशाली बन सकता है। गौरवशाली व्यक्ति भी यदि वह सम्पत्ति से हीन हो जाता है और बुरे मार्गों का अवलम्बन करने लगता है तो पशुता को प्राप्त हो जाता है। अपने में न तो बड़प्पन की भावना और न आत्मलघुत्व का ही निश्चय होना चाहिए। अपने को बड़ा समझने वाला मनुष्य दूसरों को अपने से नीचा समझेगा और वैसा ही उनके साथ व्यवहार भी करेगा। बड़प्पन और क्षुद्रता की भावना का कारण अज्ञान है। समदृष्टि का विकास कीजिए।

९. असावधानी

असावधानी और विस्मृति दो प्रकार की चारित्रिक निर्बलताएँ हैं जो मनुष्य की सफलता के मार्ग में रोड़े का काम करती हैं। असावधान व्यक्ति कोई भी कार्य समुचित ढंग से नहीं कर पाता है। वह दिल लगा कर कोई काम नहीं किया करता और किसी बात पर ध्यान नहीं दे सकता। भूलने वाले लापरवाह व्यक्ति से उसके अधिकारी असन्तुष्ट रहते हैं। उसमें अवधान का अभाव होता

है। ऐसा व्यक्ति सदा चाबियाँ, जूते, छाता और फाउण्टेन पेन खोता रहता है। समय पर कार्यालय में रेकार्ड-विशेष के कागज प्रस्तुत नहीं कर सकता है। वह आँखें छिपाता है।

१०. अनिश्चय

कुछ लोग आवश्यक विषयों में भी कुछ निर्णय नहीं कर पाते। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें स्वतन्त्र निर्णय-शक्ति का अभाव है। व्यर्थ ही किसी कार्य को आगे बढ़ाते चलना उनका स्वभाव हो जाता है; क्योंकि वे नहीं जानते कि किस प्रकार उस कार्य की पूर्ति की जाये। बहुत सोच-विचार करने पर भी वे सन्दिग्ध ही रहेंगे। अनिश्चयपरता के कारण उनको अनेक स्वर्ण अवसरों से हाथ धोना पड़ता है। अतः अपने सिद्धान्तों का निश्चय कर लेना चाहिए। जब कभी किसी बात का निश्चय करना हो तो कुछ देर के लिए अच्छी तरह सोच-विचार कर लो और फिर तुरन्त ही एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाओ। एक बार निर्णय कर लेने पर अपनी सारी विचार-शक्ति को उसमें लगा दो, उपाय ढूँढ़ निकालो और उसे कार्यान्वित करो। बहुत अधिक सोचते रहने से कोई फल नहीं मिलता। महत्त्वपूर्ण कार्यों में यदि आवश्यक हो, तो अपने से उन बड़ों की राय लो, जिन्हें विशेष कार्य का पर्याप्त अनुभव हो तथा जो आपके शुभचिन्तक हों।

११. कृपणता

अधिकांश व्यक्तियों में कृपणता की जड़ बड़ी गहराई तक जमी होती है। यही कारण है कि उत्साह, सच्चाई आदि गुणों के होने पर भी वे अपने जीवन में कोई उन्नति नहीं कर पाते। उदार हृदय व्यक्ति बहुत ही विरले हैं। बहुतों ने केवल उदारता के द्वारा ही अधिकार, ख्याति तथा सुख प्राप्त किये हैं। कृपण व्यक्ति कभी भी अपने जीवन में सफलता की आशा नहीं रख सकता। कृपणता का कारण स्वार्थ वृत्ति है। सांसारिक व्यक्तियों में से अधिकांश स्वार्थी हैं। धन ही उनका जीवन है। सभी प्रकार के दोष, लोभ, काम तथा घृणा उनमें भरे रहते हैं। यह शोचनीय है कि जज और जमींदार-जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी रेलवे स्टेशन पर कुली के साथ एक-एक आने के लिए झगड़ते देखे जाते हैं।

यदि कृपा के पास ५०,००० रुपये हों तो वह उनका उपयोग नहीं करता। वह एक लाख और अधिक पाने के लिए लालायित रहता है। यह खेद का विषय है कि धनिक-वर्ग इतना कृपण और कठोर हृदय है कि वह अपने भोग-प्रसाधनों में अपने मित्रों को सहभोगी बनाना पसन्द नहीं करता। ऐसे लोग दान में एक पैसा भी नहीं देते। वे स्वयं स्वादिष्ट पदार्थ खायेंगे; परन्तु किसी गरीब क्षुधित व्यक्ति को उसका स्वल्पांश भी देने की कभी भी उदारता न करेंगे।

इस नीच वृत्ति से छुटकारा पाने के लिए दुःखी और पीड़ित मानवता के कष्टों के निवारणार्थ प्रचुर, स्वैच्छिक तथा मुक्त दान देना एक प्रभावपूर्ण साधन है। अतः उदार वृत्ति का विकास कीजिए। केवल अपने स्त्री, बच्चे तथा परिवार की ही चिन्ता न कीजिए। जब कभी भी आप अभावग्रस्त या संकटग्रस्त लोगों से मिलें, तो उन्हें धन और भोजन दीजिए। यदि आप देंगे, तो सारे संसार की सम्पत्ति आपकी हो जायेगी। धन आपके पास स्वतः आयेगा। यह प्रकृति का अकाट्य तथा अपरिवर्तनशील नियम है। अतः दान दीजिए। सभी के साथ मिल कर उपभोग कीजिए। अपने

अन्दर की कृपणता को नष्ट कर डालिए। आपका हृदय विकसित होगा। आपके जीवन का दृष्टिकोण विशाल होगा। आधुनिक युग के बुद्ध बनिए।

१२. दुर्गुणों का दमन

यह कलियुग है। वैज्ञानिक आविष्कारों और खोज का युग है। यह फैशन और मिथ्या धारणाओं का युग है। यह वायुयान, सिनेमा, रेडियो और उपन्यासों का युग है और यही सब आधुनिक सभ्यता है। लोग अपनी-अपनी धुन और भ्रान्ति के अनुकूल कार्य करते हैं। कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति गुरु बना हुआ है। भोग-लिप्सा ने सभी पर अपना अधिकार कर रखा है। खाना, पीना और प्रजनन ही आजकल जीवन का लक्ष्य बन बैठा है। सबके अन्दर अनेक प्रकार के दुर्गुण प्रवेश कर गये हैं।

जब एक मित्र किसी अन्य मित्र से मिलता है तो वह 'जय श्रीकृष्ण', 'जय श्री राम' कह कर उसे अभिवादन नहीं करता, वरंच सिगरेट की डिब्बी और शराब के प्यालों से अभिवादन करता है। वह कहता है-"आइए, मिस्टर नायडु ! सिगरेट पीजिए। शराब पीजिए।" मदिरा इतना बलवान् दुर्व्यसन है कि यदि एक बार भी यह मनुष्य के कण्ठ से नीचे उतर जाये तो उसे पक्का शराबी बनाये बिना नहीं छोड़ती। कुछ प्रतिष्ठित और ऊँचे घराने की आधुनिक भारतीय महिलाओं ने भी सिगरेट और मद्यपान करना सीख लिया है। आरम्भ में वे थोड़ी मात्रा में अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए पीती हैं और शीघ्र ही वह उनकी आदत बन जाती है। मदिरा बड़ा घातक विष है जो कि मस्तिष्क के तन्तुओं और शिराओं को नष्ट कर देता है। इसके कारण अनेक स्नायविक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः मद्य पीने वालों की संगति से ही बचना चाहिए।

सिगरेट पीने वाले अपने आचरण के पक्ष में कुछ डाक्टरी दलीलें देते हैं। वे कहते हैं- "इससे पेट साफ रहता है। मुझे सबेरे साफ पाखाना होता है। सिगरेट फेफड़ों और मस्तिष्क को प्रसन्न कर देती है।" वे अपने दुर्व्यसन के पक्ष में बहुत कुशल तर्क उपस्थित करते हैं। यह बुरी आदत विद्यार्थी-जीवन से ही आरम्भ हो जाती है। सिगरेट पीने से आपको तनिक भी लाभ नहीं होगा। लाभ की भ्रमपूर्ण कल्पना को त्याग दो। धूम्रपान करने से फेफड़ों को हानि और नेत्रों की ज्योति क्षीण होती है। निकोटीन सारी शरीर-प्रणाली को विषाक्त बना डालती है।

पान खाना एक दूसरी बुरी आदत है। इससे जिह्वा मोटी हो जाती है। पान खाने वाले व्यक्ति शब्दों का उच्चारण ठीक-ठीक नहीं कर सकते। उन्हें थूकने के लिए एक पीकदान चाहिए। यह गन्दी आदत है। वे पान के साथ तम्बाकू भी खाते हैं। सिगरेट पीना, शराब पीना, पान खाना, नस्य लेना-ये सब बुरी आदते हैं। गाँजा, अफीम, चरस भी अन्य नशे हैं। लोग अपना चित्त प्रसन्न रखने के लिए अफीम खाते हैं। ये सारे नशे शरीर में विष भर देते हैं और मनुष्य को किसी प्रकार का कार्य करने के योग्य नहीं छोड़ते। इस भाँति कुमार्ग में धन नष्ट होता है। इन बुरी आदतों के कारण मनुष्य कितना बलहीन हो गया है !

जो लोग दिन में कई बार कड़क चाय और काफी पीते हैं, उन्हें भी बुरी आदत पड़ जाती है। गन्दे उपन्यास पढ़ना भी एक बुरी आदत है। इससे मन में निकृष्ट तथा कामुक विचार भर जाते हैं।

दिन में सोना भी बुरा है। इससे जीवन की अवधि घटती है और आलस्य तथा तामसिकता का आविर्भाव होता है। यदि आप शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं, तो इस आदत को बिलकुल त्याग दो। वह व्यक्ति कितना सुखी है, जिसमें एक भी दुर्व्यसन नहीं है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है।

बहुत से लोगों को अपनी बातचीत में प्रत्येक पल असामाजिक और अश्लील शब्दों के प्रयोग करने की बुरी आदत होती है। जब वे क्रोध और आवेश में होते हैं, तो उनके मुँह से लगातार गालियों की बौछार बरसनी आरम्भ हो जाती है। क्षण-क्षण में 'साला कहीं का' शब्द उनके मुँह से निकला करता है। 'शायद' शब्द की भाँति यह उनका तकिया कलाम बन गया है। सभ्य, शिष्ट तथा सुसंस्कृत व्यक्ति कभी भी ऐसे शब्द नहीं बोलता, असभ्य व्यक्ति 'बेवकूफ', 'कुतिया का बच्चा' शब्दों का बहुधा प्रयोग करते रहते हैं। वे बिना अपशब्द के बात ही नहीं कर सकते। यह बहुत बुरी आदत होती है। जब बालक ऐसे अपशब्द बोलें, तो माता-पिता को चाहिए कि उन्हें मना कर दें। उनको स्वयं भी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।

आँख, कान, जीभ, नाक तथा चर्म-ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण और त्वक् इनके संस्कृत नाम हैं। वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पाद (पाँव), उपस्थ (जननेन्द्रिय) तथा पायु (गुदा) - ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

जिह्वा तथा उपस्थ इन्द्रिय बहुत ही उपद्रवी हैं। ये ही सबसे अधिक दुष्ट हैं। दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास इन्द्रिय-दमन में विशेष सहायक होता है। उपवास, सात्त्विक आहार तथा नमक, चीनी, मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, मांस, मछली इत्यादि के त्याग से जिह्वा पर नियन्त्रण होता है। ब्रह्मचर्य उपस्थ इन्द्रिय को मौन वाक् इन्द्रिय को वश में करता है।

गलियों में भ्रमण करते समय बन्दर की भाँति इधर-उधर मत देखो। पाँव के अगूंठे की ओर देखो तथा सीधे चलो। सिनेमाघरों, नाचघरों तथा ऐसे स्थानों पर न जाओ जहाँ पर अश्लील गीत या नृत्य होता हो। कठोर शय्या पर सोओ। नरम गद्दों पर सोना त्याग दो। इत्र तथा फूल का उपयोग न करो। अपनी इन्द्रियों पर कठोर निगरानी रखो और उनको वहीं रोक दो। जिसने अपनी इन्द्रियों को अनुशासित कर लिया है, उसका संकल्प बलवान् तथा मन शान्त होगा। वह अच्छी तरह ध्यान कर सकता है। उसमें अपार आन्तरिक बल होता है। उसे जीवन में सफलता मिलती है। इन्द्रिय-दमन से आपको सद्‌गुणों के विकास तथा दुर्गुणों के उन्मूलन में बहुत सहायता प्राप्त होगी।

बुरी आदतों का निवारण बड़ा ही सरल है। एक वकील जो पन्दरह वर्षों से धूम्रपान करते थे, एक ही दिन में उसे छोड़ने में कृतकार्य हो सके। भावना करो कि आपके अन्दर कोई बुरी आदत है और निश्चयपूर्वक अनुभव करो कि आपको उसे तुरन्त ही छोड़ देना चाहिए। बुरी आदत को एक ही झोंके के साथ छोड़ देना चाहिए। धीरे-धीरे कम करके छोड़ने का विचार प्रायः सफल नहीं हुआ करता। जब कभी पुरानी आदत जोर करे, तो सावधान हो जाओ। जब कभी तनिक-सा भी प्रलोभन उपस्थित हो, तो दृढ़ता से अपना मुख फेर लो। मन को किसी कार्य में पूर्णतया व्यस्त कर दो। दृढ़ संकल्प करो कि मैं एक महान् पुरुष अवश्य बनूँगा। सारी बुरी आदतें क्षण-भर में उड़ जायेंगी। जब किसी दुर्व्यसन का परित्याग करना हो तो अर्धचेतन मन (चित्त) की सहायता भी प्राप्त करो। नयी स्वस्थ आदतें डालो। अपनी संकल्प-शक्ति का भी विकास करो। कुसंगति का त्याग करो। इस संसार में कोई बात असम्भव नहीं है। कहावत है कि 'जहाँ चाह है, वहाँ राह है।'

चतुर्थ अध्याय

सद्गुण

१. सत्य-सम्भाषण

परमात्मा सत्य-स्वरूप है, उसका साक्षात्कार सत्य-भाषण द्वारा ही किया जाता है। सत्यवादी व्यक्ति चिन्ताओं और व्याकुलताओं से सदा विमुक्त रहता है। उसका मन शान्त रहता है। समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है। यदि बारह वर्ष तक सत्यवादिता का अभ्यास किया गया तो वासिद्धि प्राप्त होती है। वासिद्धि के उपलब्ध हो जाने पर जो कुछ भी मुँह से कहोगे, वह सत्य ही हो कर रहेगा। सत्यवादिता से वाणी में तेज आ जाता है। सत्यवादी व्यक्ति हजारों को प्रभावित कर सकता है।

आपके विचार, वाणी और कार्य में साम्यता होनी चाहिए। साधारणतः व्यक्ति सोचते कुछ हैं, कहते कुछ और हैं तथा करते कुछ और ही हैं। यह बहुत ही अनुचित है। इसे पाखण्ड नहीं तो और क्या कहा जाये ? अपने विचारों, वचनों और कार्यों का सूक्ष्म ध्यान रखना चाहिए। असत्य-सम्भाषण से जो-कुछ थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है, उसका कोई भी मूल्य नहीं। आप अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग करते तथा चित्त को दूषित बनाते हैं। असत्य-सम्भाषण की आदत ने बहुतों का विनाश किया है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र का नाम आज भी घर-घर में लिया जाता है, इसलिए कि वे सत्यवादी थे। हर अवस्था में उन्होंने अपने सत्य-वचन का प्रतिपालन किया था। सत्य के लिए उन्होंने न तो स्त्री की परवाह की और न राज्य की चिन्ता ही। सत्य के लिए उन्होंने अनेक कष्टों का वरण किया। अपने जीवन के अन्त तक वे सत्यवादी ही बने रहे। विश्वामित्र मुनि ने उनको सत्य से डिगाने के लिए यथाशक्य प्रयत्न किये; परन्तु वे अपने षड्यन्त्र में विफल रहे और अन्त में सत्य की ही विजय हुई।

बड़े अक्षरों में लिखो - 'सदा सत्य बोलो।' इसे अपने घर की दीवाल पर इस प्रकार टाँग दो कि हर एक की दृष्टि सदा वहाँ पर पड़ती रहे। जब-जब आप असत्य-भाषण करेंगे, तब-तब यह सूचना आपको सावधान करती रहेगी। आप तत्क्षण उसे रोकने का प्रयत्न कर सकेंगे। एक दिन

आयेगा कि आप सत्यवादिता में अपने को स्थिर रख सकेंगे। जिस दिन कुछ झूठ बोलें, तो उसके लिए प्रायश्चित्त-स्वरूप उपवास करें। सदाचारी मनुष्य बुद्धिमान् मनुष्य से अधिक शक्तिशाली होता है।

सभी परिस्थितियों में सच बोलो। आरम्भ में आप अपनी आय से हाथ भी धो सकते हैं; परन्तु अन्त में आपकी विजय अवश्यम्भावी है। एक वकील जो कचहरी में सत्य बोलता है, झूठी गवाही नहीं दिलाता आरम्भ में अपनी वकालत को खो सकता है; परन्तु कालान्तर में वही वकील न्यायाधीश और मुवक्किलों से सम्मान प्राप्त करेगा। उसके पास सैकड़ों मुवक्किल जमा हो जायेंगे। परन्तु उपक्रम में उसे उपर्युक्त बलिदान अवश्य करना होगा।

२. नियम और समय की पाबन्दी

जब आप अपने नियमों पर अटल तथा समय के पाबन्द रहोगे, तभी पूर्ण अनुशासन से काम में निरत रह सकते हो। अनुशासन के अभाव में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं होता। मन 'अनुशासन', 'समय की पाबन्दी' के नाम से ही भयभीत हो जाता है। जो व्यक्ति नियमपूर्वक अभ्यास नहीं करता और अकस्मात् अभ्यास शुरू कर देता है, वह अपने प्रयत्नों के उचित फल को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करो। देखो, ऋतु-क्रम किस प्रकार नियमपूर्वक चल रहा है। सोचो, किस प्रकार नियमानुसार सूर्य उदित और अस्त होता है; वर्षाकालिक पवन आता है, फूल खिलते हैं और फल-तरकारियाँ उगती हैं, चन्द्रमा और पृथ्वी धुरी पर घूमते और रात-दिन, सप्ताह, मास, अयन और संवत्सर चक्कर लगाते हैं। प्रकृति आपकी गुरु और पथ-प्रदर्शक है।

नियमितता, समय की पाबन्दी और अनुशासन साथ-साथ चला करते हैं। उनको पृथक् नहीं किया जा सकता। भारतवर्ष के विश्वविद्यालय के छात्र वेष-भूषा, रीति-रिवाज में पश्चिम का अनुकरण कर लेते हैं। जिनका जीवन में विशेष महत्त्व नहीं, ऐसे चरित्रों के अनुकरण से क्या लाभ ? पश्चिम के लोगों से उन्होंने क्या यह सीखने की चेष्टा की है कि उनके ही समान हम भी नियम और समय के पाबन्द बनें। देखा नहीं कि अँगरेज क्षण-भर की भी देरी नहीं करते हैं। वे लोग समय के बड़े पाबन्द होते हैं। भारत की अपेक्षा पश्चिम में विशेषज्ञों, अन्वेषकों और शोधकों की संख्या कई गुना अधिक है। यह ठीक है कि भारत में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रमण, गान्धी जैसे कुछ महापुरुष हो चुके हैं; परन्तु पश्चिम में विशेषज्ञों की संख्या को गिना भी नहीं जा सकता है। वे अपने इस गुण-समय की पाबन्दी - के लिए प्रसिद्ध हैं।

भारतवासी अपनी 'इण्डियन पंक्च्वैलिटी' के लिए प्रसिद्ध हैं। यदि समाचार-पत्र में सूचना होगी कि 'टाउन हाल' में ठीक चार बजे शाम को एक सभा होनी निश्चित हुई है, तो भारत में लोग साढ़े पाँच बजे के लगभग एकत्रित होना आरम्भ करते हैं। यही 'इण्डियन पंक्च्वैलिटी' है। जो लोग समय के पाबन्द नहीं होते, वे गाड़ी नहीं पकड़ पाते। ऐसे लोग अपने व्यवसाय को खो बैठते हैं, अपने ग्राहकों को रुष्ट कर देते हैं। यदि विद्यार्थी समय का पाबन्द न हुआ, तो अध्यापक उसे पसन्द नहीं करते हैं। यदि कोई व्यक्ति समय पर न्यायालय में उपस्थित नहीं होता, तो मुकदमे में उसकी हार हो जाती है।

सम्पूर्ण जीवन को नियमित बनाओ। समय पर रात को सो जाओ और समय पर ही सबेरे उठो। समय पर भोजन करो। समय पर अध्ययन में निरत हो जाओ और समय पर शारीरिक व्यायाम करो। आपका जीवन सफल रहेगा। समय-तत्परता को एक मूल-मन्त्र बना लो। अपना एक दैनिक कार्यक्रम निर्धारित कर लो और उसका पालन करो।

३. यथाकाल-व्यवस्था

यह एक ऐसा सद्‌गुण है जिसके द्वारा मनुष्य अपने को दूसरे व्यक्तियों के साथ हिला-मिला लेता है, चाहे उन लोगों की प्रकृति कैसी भी क्यों न हो। जीवन में सफलता पाने के लिए अनुकूल व्यवहार-पटुता अनिवार्य गुण है। शनैः-शनैः इसका उपार्जन करना आवश्यक है। आज अधिकांश लोग दूसरों के साथ हिल-मिल कर रहना नहीं जानते। व्यवहार-पटुता जीवन की एक कला है, जिससे व्यक्ति दूसरों के हृदय को जीत लेता है और थोड़ी-सी नम्रता से अन्ततः जीवन-संग्राम में निश्चित विजय प्राप्त करता है।

पत्नी पति से हिल-मिल कर रहना नहीं जानती; अतः पति को सदा नाराज बनाये रखती है, घर में कलह का बीज बोती है और अन्ततः सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। कार्यालय का कर्मचारी अपने कार्याध्यक्ष के अनुकूल व्यवहार करना नहीं जानता है; अतः झगड़े में पड़ कर नौकरी से हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार व्यवसायी व्यवहार-पटुता के अभाव में अपने ग्राहकों को नाराज कर देता है, फलतः अपने व्यवसाय को ही हानि पहुँचाता है। यह संसार केवल व्यवहार पर ही चल रहा है। जो व्यक्ति इस कला या विज्ञान को जानता है, वह जीवन की सभी परिस्थितियों में सुखी रहता है।

इस कला को समुन्नत करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में विनम्रता का होना आवश्यक है। यदि कर्मचारी अपने अध्यक्ष की मनोवृत्तियों का अध्ययन कर, तदनुकूल व्यवहार कर पाता है तो अध्यक्ष उसका ही गुलाम बन जाता है। उसे मृदु शब्दों का प्रयोग करना होगा। धीरे बोल कर, मृदु वाणी बोल कर, अध्यक्ष की आज्ञा का अक्षरशः पालन कर, उसकी बातों की उपेक्षा या विरोध न कर वह अपने स्वामी को प्रसन्न कर सकता है। आज्ञाकारिता सेवा से श्रेयस्कर है। 'हाँ जी', 'जी हुजूर', 'बहुत अच्छा महाशय' कहो। ऐसा कहने से आपका कुछ व्यय नहीं होता है। उसके दिल में आपके प्रति एक हार्दिक भावना बनी रहती है। वह आपकी गलतियों को क्षमा कर देगा। हिल-मिल कर रहने के लिए नम्रता और आज्ञाकारिता आवश्यक गुण हैं। अहंकारी तथा अभिमानी मनुष्य के लिए इस गुण का विकास करना बहुत कठिन है। वह सदा संकट से घिरा रहता है। प्रत्येक कार्य में उसे असफलता ही मिलती है।

एक ही कमरे में रहने वाले विद्यार्थी एक-दूसरे से हिल-मिल कर रहना नहीं जानते। आपस में कलह का सूत्रपात होता है। फल यह होता है कि मित्रता विच्छिन्न हो जाती है। हिल-मिल कर रहने से मित्रता चिरस्थायी रहती है। छात्र गण छोटी-छोटी बात पर झगड़ पड़ते हैं। एक छात्र कहता है : "मैंने अपने मित्र 'क' को कितनी ही बार चाय पिलायी और कितनी बार मैं उसे सिनेमा में ले गया और आज जब मैंने उससे प्रेमचन्द्र का गोदान माँगा तो उसने एकदम इनकार कर दिया। ऐसे मित्र से मेरा क्या काम ? मुझे उसकी मित्रता पसन्द नहीं।" इस प्रकार उन दोनों की मित्रता विच्छिन्न हो जाती है। देखिए न, छोटी-सी बात, उस पर दो मित्रों का सम्बन्ध विच्छेद।

यथाकाल-व्यवस्था ही वह दृढ़ सूत्र है जो सबको प्रेम तथा मैत्री के अटूट पाश में बाँधे रखता है। व्यवहार-पटु व्यक्ति संसार में कहीं भी जाये, किन्हीं लोगों के बीच में रहे, सदा आनन्दपूर्वक जीवन-यापन कर सकता है। ऐसा व्यक्ति अज्ञात रूप से ही सबका प्रेम-पात्र बन जाता है। दूसरों के प्रेम की बात छोड़िए, उसका अपना जीवन ही शक्ति और अनहत आनन्द से परिपूरित हो उठता है।

यथाकाल-व्यवस्था से त्याग-भावना विकसित होती है और स्वार्थपरता का अन्त हो जाता है। व्यवहार-कुशल व्यक्ति अपनी वस्तु में दूसरों को भी हिस्सा देता है। उसे निन्दा, अपमान तथा कटु शब्द सहन करने पड़ते हैं। उसे जीवन की एकता का दर्शन करना पड़ता है। जो इस गुण का अभ्यास करता है, उसे घृणा तथा अहं-भावना को विनष्ट करना पड़ता है और सबसे हिल-मिल कर रहना पड़ता है। इस सद्गुण के द्वारा विश्व-प्रेम की भावना विकसित होती है तथा घृणा भाव का नाश होता है।

४. निष्कपटता और ईमानदारी

निष्कपट और ईमानदार व्यक्ति सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करता है। उसके उच्च अधिकारी उससे खुश रहते हैं। पश्चिम के देशों में ईमानदारी को सर्वोत्तम नीति कहा जाता है; किन्तु पूर्व में इसे परम धर्म (गुण) कहा जाता है। इन गुणों से समनुयुक्त व्यक्ति संसार में कहीं भी चला जाये, लोग उसका आदर-सत्कार करेंगे। निष्कपट और ईमानदार व्यक्ति बहुत ही विरले होते हैं।

निष्कपट व्यक्ति दूसरों के दुःख से दुःखी होता है और उसे निवारण करने का यथाशक्य प्रयास करता है। उसमें सहानुभूति की प्रचुरता होती है। निष्कपट व्यक्ति बहुत ही उदार होता है। कूटनीति, ठगी, नीति-पटुत्व, दोहरी चाल से वह वियुक्त होता है। वह दम्भ और छल से कोसों दूर रहता है। उसे अपनी आजीविका के लिए कहीं भी कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। निष्कपट व्यक्ति अपने स्वामी का हितचिन्तक होता है। खरा मित्र, निष्कपट पत्नी, सच्चा पुत्र तथा सच्चा सेवक इस भूलोक में साक्षात् देवतुल्य हैं। आर्जव से बढ़ कर इस संसार में और कोई गुण नहीं है। सभी को इसका उपार्जन करना चाहिए।

५. धैर्य और उद्योग

धैर्य और उद्योग सात्त्विक गुण हैं। जब तक इन दोनों गुणों का सम्पादन न कर लिया जाये, लौकिक या पारमार्थिक सफलता नहीं मिल सकती। पद-पद पर कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती हैं; किन्तु धैर्य और उद्योग के द्वारा उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। महात्मा गान्धी की सफलता का मूल-मन्त्र यही था। वे विफलताओं से कभी भी हताश नहीं होते थे। संसार के सभी महापुरुषों ने धैर्य और उद्योग के बल पर अपने जीवन में महानता, सफलता और प्रसिद्धि की प्राप्ति की थी।

धैर्यशील व्यक्ति का दिमाग सदा शान्त रहता है। उसकी बुद्धि सदा ठिकाने पर रहती है। वह आपदाओं और विफलताओं से भय नहीं खाता। अपने को दृढ़ बनाने के लिए वह अनेक उपाय

खोज निकालता है। एकाग्रता के अभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिए भी धैर्य की महान् आवश्यकता है। बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो कठिनाइयों के आ जाने पर काम छोड़ देते हैं; उनमें धैर्य और उद्योगशील स्वभाव की कमी है। ऐसा नहीं होना चाहिए। क्रोधी स्वभाव पर विजय पाने के लिए धैर्य एक सबल साधन है। कभी भी किसी बात की शिकायत न करो। धैर्य प्रचुर बल प्रदान करता है।

६. आत्म-निर्भरता

स्वावलम्बन प्रमुख गुण है। इससे आन्तरिक शक्ति प्राप्त होती है। लौकिक और आध्यात्मिक-दोनों प्रकार की सफलताओं को पाने के लिए यह एक अनिवार्य गुण है। साधारणतः देखा जाता है कि अधिकांश मनुष्य सदा दूसरों पर आश्रित रहते हैं। भोग-विलास की आदत ने मनुष्य-समाज को बहुत निर्बल कर दिया है। डाक्टर और वकील को जूते पहनाने के लिए भी नौकर चाहिए। वे कुएँ से जल नहीं खींच सकते। एक फलांग पैदल चलना उनके लिए दूभर है। आजकल व्यक्ति हर बात के लिए दूसरों पर निर्भर रहा करता है। अपना भोजन अपने हाथों से बनाना चाहिए। नौकरों से काम कराने की आदत छोड़ देनी चाहिए। अपने वस्त्र अपने हाथ से धोने चाहिए। नित्यप्रति कालेज या कार्यालय में पैदल ही जाना चाहिए। इज्जत, मान और समाज में अपनी प्रतिष्ठा के भाव को छोड़ देना चाहिए। मद्रास उच्च न्यायालय के प्रख्यात मुख्य न्यायाधिपति श्री टी. मुत्तु स्वामी अय्यर पैदल चल कर ही न्यायालय जाया करते थे। उनके इस स्वावलम्बन के गुण के कारण आज भी लोग उनका नाम स्मरण करते हैं।

७. प्रत्युत्पन्नमति

कभी-कभी व्यावहारिक कठिनाइयाँ दुविधा में डाल देती हैं। आपको हतोत्साह नहीं होना चाहिए। हिम्मत न हारो; बल्कि अपनी बुद्धि का उपयोग करो। चतुर तरीकों और सफल योजनाओं का आविष्कार करो। अपनी आन्तरिक शक्तियों और प्रसुप्त क्षमताओं को काम में लाओ। जब घर में आग लग जाती है, तो आप कितनी स्फूर्ति से काम में जुट जाते हैं। किस प्रकार और कहाँ से यह दृढ़ता और स्फूर्ति आयी? पता नहीं चलता कि कहाँ से वह तेज और वह बल आया। उस समय आपको दूसरे कामों का ज्ञान नहीं रहता, आपका चित्त एकाग्र हो जाता है। आप सुन्दर व्यवस्थापूर्वक कार्य करने लग जाते हैं और इस प्रकार अपने घर की सम्पत्ति और सम्बन्धियों के प्राण की यथासम्भव रक्षा कर पाते हैं। आप अद्भुत कार्य करते हो। जब बला टल जाती है तो कहते हो कि ईश्वर की रहस्यमयी शक्ति उस समय मेरे अन्दर कार्य कर रही थी।

समय का निरर्थक प्रयोग न करो। जब एक बार कार्य का निश्चय कर लिया है, तो दक्षतापूर्वक उसका सम्पादन करो। दीर्घसूत्रता समय का नाश कर देती है।

८. सन्तोष

पश्चिम में एक कहावत है कि 'सन्तुष्ट व्यक्ति सदा दावत का आनन्द लेता रहता है।' इसका अभिप्राय यह हुआ कि लालची व्यक्ति सदा अशान्त रहता है। लालच अग्नि के समान है,

वह व्यक्ति को अन्दर-ही-अन्दर जला डालता है। लालच-रूप विष की प्रतिक्रिया के लिए सन्तोष ही अचूक औषधि है। सन्तोष से महान् और कोई भी सम्पत्ति उपार्जन करने योग्य नहीं है। सन्तुष्ट व्यक्ति सबसे अधिक सम्पत्तिशाली व्यक्ति के समान जीवन व्यतीत करता है। उसकी शान्ति का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उसे इस पृथ्वी का शक्तिशाली सम्राट् कहा जाये, तो अनुचित न होगा।

जिस व्यक्ति के पास एक करोड़ रुपया होता है, वह दश करोड़ के लिए लालायित रहता है। मन की तो यह विशेषता है ही कि वह एक पदार्थ को प्राप्त कर दूसरे पर कूद जाता है। इसी लोलुप मन के कारण ही संसार में प्रत्येक मनुष्य अशान्त हो कर मारा-मारा फिरता है। 'यह मेरा है', 'वह मेरा है', 'मैं उसका उपार्जन अवश्य करूँगा' - इस प्रकार की भावनाएँ करता रहता है। इस भाँति मनुष्य विपत्ति-जाल में फँस जाता है और अशान्त बनता है। जहाँ लोभ, वहाँ काम-वासना और इसी प्रकार जहाँ काम-वासना, वहाँ लोभ भी अवश्य ही रहेगा। लोभ और काम के कारण बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, समझ में पत्थर पड़ जाता है, स्मृति पोली हो जाती है।

सन्तोष मनुष्य को आलसी नहीं बनाता है। इससे तो मन को शक्ति और शान्ति की प्राप्ति होती है। सन्तोष धारण करने से अनावश्यक और स्वार्थपूर्ण चेष्टाओं का प्रवाह रुक जाता है। सन्तुष्ट व्यक्ति का मन शान्त तथा एकाग्र होने से अधिक काम करने में समर्थ होता है।

९. चरित्र-निर्माण

मनुष्य का शरीरान्त होने पर भी उसका चरित्र बना रहता है। चरित्र ही मनुष्य में शक्ति और शौर्य का स्फुरण भरता है। चरित्रहीन व्यक्ति संसार में मृतक के समान है। निष्कलंक जीवन का उपार्जन करो। मनुष्य-जीवन का सारांश है चरित्र।

चरित्र और धन की तुलना हो ही नहीं सकती। चरित्र एक शक्तिशाली उपकरण है। यह एक सुन्दर पुष्प के समान है जो अपनी सुरभि दूर-दूर तक विकीर्ण करता है। महान् विचार तथा उज्ज्वल चरित्रवान् व्यक्ति का ओज प्रभावशाली होता है।

कितना ही चतुर कलाकार क्यों न हो, कितना ही निपुण गायक क्यों न हो, कवि या वैज्ञानिक क्यों न हो; पर चरित्र न हुआ तो समाज में उसके लिए सम्मान्य स्थान नहीं है। जन-समाज उसकी अवहेलना ही करेगा।

चरित्र व्यापक शब्द है। साधारणतः चरित्र का अर्थ होता है नैतिक सदाचार। जब हम कहते हैं कि रामनारायण चरित्रवान् है तो हमारा अर्थ होता है कि वह नैतिक सदाचारशील है। असत्य-भाषण करना, स्वार्थी और लोलुप होना, दूसरों के दिलों को चोट पहुँचाना-इन सबसे मनुष्य के दुश्चरित्र का बोध होता है।

निष्कलंक चरित्र का निर्माण करने के लिए निम्न गुण उपार्जित किये जाने चाहिए-

नम्रता, अहिंसा, क्षमाशीलता, निर्भयता, क्रोध-हीनता, जीव-दया, सौजन्य तथा घृणा और द्वेष का अभाव।

कार्य करने पर एक प्रकार की आदत का उदय होता है। आदत का बीज बो देने से चरित्र का उदय होता है। चरित्र का बीज बो देने से भाग्य का उदय होता है। चित्त में विचार, अनुभव और कर्म के संस्कार मुद्रित हो जाते हैं। व्यक्ति के मर जाने पर भी संस्कार जीवित रहते हैं। विचार और कर्मजन्य संस्कार मिल कर चरित्र का निर्माण करते हैं। व्यक्ति ही इन विचारों और आदतों का विधाता है। आज जिस अवस्था में व्यक्ति को देखते हो, वह भूतकाल का ही परिणाम है। वह आदत का उत्तर रूप है। प्रत्येक व्यक्ति विचारों और कार्यों पर नियन्त्रण स्थापित कर आदतों का मनोनुकूल निर्माण कर सकता है। यदि बुरे विचारों और बुरी आदतों के बदले अच्छे विचारों और अच्छी आदतों का अभ्यास किया जाये तो व्यक्ति को दिव्य गुणों से परिपूरित कर दिया जा सकता है। असत्यवादी सत्यवादी बन सकता है। दुश्चरित्र सन्त बन सकता है।

व्यक्ति की आदतों, गुणों और आचार को प्रतिपक्ष-भावना की विधि से बदला जा सकता है। प्रतिपक्ष-भावना विरोधी गुणों की भावना को कहते हैं। साहस और सत्य की भावना करो। साहसी और सत्यवादी बन जाओगे, तो भय और असत्यवादिता का स्वयं ही निवारण हो जायेगा। ब्रह्मचर्य और सन्तोष का विचार करो, तो काम-वासना और लोभ का पराभव हो जायेगा। प्रतिपक्ष-भावना द्वारा अपनी दुश्चरित्रता का दमन करना चाहिए। यह वैज्ञानिक विधान है। चरित्र के लिए व्यक्ति का विचार, आदर्श और मानसिक प्रेरणाएँ ही उत्तरदायी हैं। यदि विचारों, आदतों और मानसिक प्रेरणाओं को बदल दिया जाये, तो चरित्र भी बदला जा सकता है। नवीन, स्वस्थ, बलशाली और धर्मपूर्ण आदतें पुरानी, अस्वस्थ, अपवित्र, निर्बल, अधर्मपूर्ण आदतों को स्थानान्तरित कर देती हैं। चरित्र-निर्माण ही सन्तत्व का विभूषण है। अपने चरित्र का निर्माण करो। चरित्र-निर्माण से ही जीवन में सच्ची सफलता मिल सकती है।

पंचम अध्याय

शिक्षा

१. शिक्षा

पौर्वात्य हिन्दू-ऋषियों की सभ्यता और संस्कृति तथा पाश्चात्य देशों की संस्कृति की रीतियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। मुख्य भेद यही है कि पाश्चात्य देशों में लोग अपने संकल्प और स्मृति को भौतिक उन्नति और लौकिक समृद्धि के हेतु प्रयुक्त करते हैं। उन्होंने सामान्यतः परा

जीवन की तो अवहेलना ही कर दी है। यह उन लोगों की महान् भूल है। परन्तु भारत के योगी जन अपनी स्मृति और संकल्प-शक्ति को आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयुक्त करते हैं। उनका लक्ष्य सदा आत्म-साक्षात्कार ही हुआ करता है। अतः पाश्चात्य देशों के दार्शनिकों को आध्यात्मिक संस्कृति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और किसी भी संस्कृति के आध्यात्मिक आधारों को तो भूलना ही नहीं चाहिए। भौतिक उन्नति की प्राप्ति तो कुछ सीमा तक ही हो सकती है। साथ-साथ आध्यात्मिक गुणों का विकास भी होते रहना चाहिए। यह आवश्यक है।

हमारे कालेज के विद्यार्थियों में खोखले अनुकरण का भूत प्रवेश कर गया है। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता से धूम्रपान करना; पतलून, हैट, बूट, कालर और नेकटाई पहनना, अँगरेजी ढंग से बाल कटाना आदि सीखा है; परन्तु उन्होंने पाश्चात्य देशों के अनेक अन्य सद्गुणों को ग्रहण नहीं किया है। आत्म-बलिदान, देश-प्रेम, सेवा-भावना, समय की पाबन्दी, लगन, सहनशीलता, विद्वत्ता इत्यादि श्लाघ्य गुण पश्चिम के लोगों में हैं। कुछ धनी परिवार के नवयुवकों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय और निराशाजनक है। वे सिनेमा के टिकट पूरे महीने के मँगा लेते हैं और अपना समय ताश खेलने और गन्दा जीवन बिताने में नष्ट करते हैं। वे धार्मिक मनोवृत्ति वाले विद्यार्थियों का साथ पसन्द नहीं करते। वे आधुनिक फैशन तथा स्टाइल के गुलाम बन चुके हैं।

आधुनिक विश्वविद्यालयों में परीक्षा पास करके वास्तविक शिक्षा या सच्ची संस्कृति नहीं प्राप्त होती। पुस्तकें रट कर कोई भी डिग्री ले सकता है। आवश्यकता तो है नैतिक संस्कार की, आत्मज्ञान की, अधार्मिक स्वभाव को धार्मिक बनाने की, सद्व्यवहार की, सच्चरित्रता की, इन्द्रिय-संयम की, आत्म-निग्रह की और दिव्य सद्गुणों की। इस प्रकार की अलभ्य शिक्षा आधुनिक विश्वविद्यालयों में नहीं मिल सकती। पाठ्य-विषयों में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। जो पुस्तकें नैतिक आचारों को समुन्नत करने में सहायक हों, वे ही पढ़ायी जानी चाहिए। तभी कोई विश्वविद्यालय सच्ची शिक्षा और संस्कृति से युक्त विद्यार्थी तैयार कर सकता है।

जैसी शिक्षा मिलती है, वैसा ही विद्यार्थियों का स्वभाव तथा चरित्र बनता है। देश की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा भी क्रियात्मक होनी चाहिए। विद्यार्थी के मस्तिष्क में ऐसे-ऐसे विषय भर देना जो निकट भविष्य में किसी उपयोग में न आ सकते हों-यह शिक्षा नहीं है। परीक्षा से पहले विद्यार्थी पाठ याद कर लेते हैं और परीक्षा होते ही भूल जाते हैं। ये पाठ उनके दैनिक व्यवहार में प्रायः किसी भी काम के नहीं पाये जाते।

विद्यार्थियों को थोड़े से आसन, प्राणायाम, प्रार्थना तथा धार्मिक शिक्षाप्रद कहानियों की शिक्षा दी जानी चाहिए। उनके जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। धर्म में ही नीति, सदाचार और संस्कृति का समावेश है। धार्मिक संस्कृति जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्णता प्रदान करती है।

बालक देश का भावी नागरिक होता है। वह राष्ट्र का धन है। उपयुक्त शिक्षा के द्वारा उसे अपनी प्रच्छन्न शक्तियों को प्रकट करने का अवसर मिलना चाहिए। यदि वह हृदय और मस्तिष्क के उत्तम गुणों से सम्पन्न होगा तो संसार में उदीयमान नक्षत्र के समान प्रकाश विकीर्ण करेगा।

२. आधुनिक जीवन

वैज्ञानिकों ने भौतिक जगत् में बहुत से अनुसन्धान किये हैं और उन्होंने प्रकृति की भौतिक शक्तियों के नियन्त्रण के उपाय खोज निकाले हैं। परन्तु क्या ये वैज्ञानिक अन्वेषण हमें वास्तव में सुखी बना सकते हैं? विज्ञान ने हमारे लिए क्या किया है? निःसन्देह विज्ञान ने भौतिक ज्ञानकोष की बहुत वृद्धि की है; परन्तु क्या अब हम वास्तव में सुखी हैं? क्या बिजली का पंखा, वायुयान, रेडियो तथा सिनेमा हमें सच्ची शान्ति दे सकते हैं जिनके लिए मन लालायित रहता है? वैज्ञानिक वर्षों तक प्रयोगशाला में बन्द रह कर आविष्कार तथा खोज करते रहते हैं। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। वे हमें सुविधाएँ प्रदान करते हैं। बिजली हमारा सारा काम करती है। वह पानी निकालती है, हमें लन्दन और पेरिस पहुँचाती है। विज्ञान ने हमारी यात्राएँ और यातायात को बहुत सुगम और त्वरित बना दिया है। परन्तु इसमें कुछ हानियाँ भी हैं और वे हानियाँ इनसे प्राप्त होने वाले लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। इससे हमारा जीवन बहुत खर्चीला और विलासपूर्ण बन गया है। मनुष्य अब पहले से अधिक अशान्त है। आज के विलास के प्रसाधन कल की आवश्यकता के प्रसाधन बन जाते हैं। प्रत्येक नर-नारी रेडियो, टार्च, कलाई-घड़ी, मोटर-कार तथा गृह-सिनेमा चाहता है। जीवन का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। अधिकारी और कर्मचारी अपने जीवन-निर्वाह के लिए असत्य-सम्भाषण और घूस लेने से नहीं हिचकिचाते। सभी ऋण के भार से दबे हुए हैं। सिनेमा और फैशन उनकी सारी आय को चूसे जा रहा है। लोगों के जीवन का कोई मापदण्ड ही नहीं है। वे इस विषय-जगत् में आत्म-विभ्रमित हो कर भटक रहे हैं। इन्द्रियों की तृप्ति ही उनके जीवन का लक्ष्य है। तथाकथित शिक्षित जन भी इससे अछूते नहीं हैं। वे तो और भी अधिक अज्ञान में हैं। बुद्धिशाली जन घूस लेने तथा अनैतिक रूप से धनोपार्जन करने के अनेक चतुर ढंग खोज निकालते हैं। सर्वत्र ही भ्रष्टाचार फैला हुआ है। सच्चाई और ईमानदारी का कहीं पता नहीं है। कूटनीति, चाल, धोखा और छल-कपट ने सब पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। ये सब वैज्ञानिक आविष्कार तथा पाश्चात्य सभ्यता पर आधारित विलासपूर्ण जीवन के दुष्परिणाम हैं। इसने सर्वत्र ही अशान्ति ला दी है। शारीरिक पतन हो चला है। लोग अब एक फर्लांग भी पैदल नहीं चल सकते हैं। इसके लिए भी उन्हें गाड़ी की आवश्यकता पड़ती है। डाक्टर या वकील भले ही भूखा मर रहा हो; पर उसको मोटर रखनी ही पड़ती है, अन्यथा उसे रोगी या मुवक्किल नहीं मिलेंगे। उसकी पत्नी को रेशमी साड़ी तथा सौन्दर्य के सारे प्रसाधन चाहिए। उसे सिनेमा में स्थान सुरक्षित कराने पड़ते हैं। इन सब चीजों के लिए वह धन कहाँ से लाये ? वह गरीबों से पैसा निकालता है। डाक्टर बोतल को जल और रंगीन औषधि से भर देता है और उसके लिए भारी रकम वसूल करता है। वह लोगों के घर जाने तथा दवाई की सुई लगाने के लिए भारी रकम ऐंठता है। करुणा, सहानुभूति और ईमानदारी उसके हृदय से दूर चले गये हैं। डाक्टर कहता है- "मैं क्या करूँ? जमाना बुरा आ गया है। जीवन-निर्वाह बहुत ही मँहगा है। बच्चों की शिक्षा मँहगी हो गयी है। मैं जानता हूँ कि मैं गलत मार्ग पर हूँ; परन्तु मैं ऐसा करने को विवश हूँ। मुझे झूठ बोलना तथा अनुचित रूप से धनोपार्जन करना पड़ता है।" प्राचीन काल में लोग अपने वस्त्र स्वयं धोते थे। वे प्रतिदिन कई मील चल लेते थे। वे हृष्ट-पुष्ट होते थे। वे सरल जीवन व्यतीत करते थे। नेपाली तथा महाराष्ट्रीय श्रमिकों को अब भी देखो। वे साधारण रोटी, नमक तथा दो मिर्च पर निर्वाह करते हैं; फिर भी वे कितना काम करते हैं। उनका शरीर और शारीरिक बल आश्चर्यजनक है। आज भी ओवल्टीन, विटामिन सत, अलेनबरी रस्क तथा ओट मील चाहते हैं। पत्नी अपने लिए एक अलग नौकर और रसोइया चाहती है। आपको जूता पहनाने के लिए भी एक नौकर चाहिए।

तो क्या इस वर्तमान की शोचनीय अवस्था के सुधार का कोई उपाय है? हमें पुनः प्राकृतिक जीवन की ओर मुड़ना होगा। हमें अपने पूर्वजों का सिद्धान्त 'सादा जीवन और उच्च विचार' अपनाना होगा। सरल और प्राकृतिक जीवन व्यतीत कीजिए। सादे वस्त्र पहनिए। प्रतिदिन पैदल

चलिए। सिनेमा जाना तथा उपन्यास पढ़ना छोड़ दीजिए। कठोर और श्रमपूर्ण जीवन यापन कीजिए। आत्म-निर्भर बनिए। अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। व्यवहार में सच्चे रहिए। मन और इन्द्रियों का नियन्त्रण कीजिए। सद्गुणों का विकास कीजिए। सच बोलिए और धर्मानुकूल काम कीजिए।

३. विवाह

विवाह एक व्यावहारिक सौदा नहीं है, अपितु पति और पत्नी में एक धर्म-बन्धन है जिसके द्वारा वे धर्मयुक्त जीवन बिता कर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। विवाह का उद्देश्य तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त करना है।

भारत में माता-पिता ही अपने पुत्र के लिए लड़की की खोज करते हैं। वे वंशावली की भली-भाँति जाँच-पड़ताल करते हैं। यहाँ प्रणय की प्रथा नहीं है। बालक और बालिकाओं को अपने पत्नी और पति के चुनाव करने देने में बहुत-सी हानियाँ हैं; क्योंकि उनमें विवेक और अनुभव नहीं होता।

यदि मनुष्य गृहस्थ-जीवन में भी ब्रह्मचर्य का पालन करे तथा वंश-वृद्धि के लिए मैथुन करे तो उसकी सन्तान स्वस्थ, बुद्धिमान्, बलवान्, सुन्दर तथा आत्म-त्यागी होगी। उसे अपनी पत्नी को भी धर्माचरण, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, धारणा, ध्यान तथा सद्गुणों का अर्जन आदि की शिक्षा देनी होगी। वह घर सचमुच वैकुण्ठ ही है जहाँ पति और पत्नी आदर्श जीवन बिताते हैं। पति को अपनी स्त्री और सन्तान को फैशन की शिक्षा न दे कर उन्हें सरल और पवित्र जीवन बिताने के लिए धार्मिक शिक्षा देनी चाहिए।

माता-पिता का कर्तव्य है कि वे सबसे पहले अपने को आदर्श बना लें, तभी बालक भी उनका अनुकरण कर सकेंगे। यदि माता-पिता में खराब आदतें हुईं तो उनके बच्चे भी उनका अनुकरण करेंगे; क्योंकि बच्चों में तो प्रधान गुण है अनुकरण करना।

गृहस्थों को अपने बच्चों की चाल-ढाल का ध्यान रखना चाहिए, ताकि वे कुसंगति में न पड़ जायें। माता-पिता का महान् कर्तव्य है, अपने बच्चों को शिक्षित-दीक्षित करना। यदि वे अपने इस प्रमुख उत्तरदायित्व को नहीं निभाना चाहते तो अच्छा था, यदि वे तभी अपने को काम के वशीभूत न होने देते और सन्तति-प्रजनन के कारण न बनते। असत्य-भाषण करने पर बच्चों को दण्ड मिलना चाहिए। उन्हें धूम्रपान करने, सिनेमा जाने तथा उपन्यास पढ़ने की छूट नहीं देनी चाहिए।

बाल-विवाह समाज के लिए घातक है। सारा भारत बाल-विधवाओं से भरा पड़ा है। बेचारे नवयुवक, जिनको इस संसार और जीवन का रत्ती-भर पता नहीं है, चौदह या सोलह वर्ष की अल्पायु में ही विवाह-पाश में आबद्ध कर दिये जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चे ही बच्चे पैदा कर रहे हैं। अठारह वर्ष के एक लड़के के भी तीन लड़के हैं। कितनी दयनीय अवस्था है! तभी तो आज के समाज का मानसिक और शारीरिक पतन हो रहा है। दीर्घायु का कहीं नाम नहीं।

सभी अल्पायु हैं। अधिक सन्तानोत्पत्ति के कारण स्वास्थ्य गिर जाता है और अनेकानेक रोग भी पैदा हो जाते हैं।

पचास रुपये मासिक पाने वाले एक किरानी के तीस वर्ष की आयु में छह बच्चों की वृद्धि हो जाती है। वह कभी नहीं सोचता कि. 'मैं इतने बड़े परिवार का भरण-पोषण किस प्रकार करूँगा? मैं अपनी सन्तान को किस प्रकार शिक्षित बनाऊँगा ? मैं अपनी पुत्री का विवाह किस प्रकार करूँगा ? कामोत्तेजना में वह अनिष्ट कार्य को बार-बार करता है। उसमें जरा भी आत्म-संयम नहीं है। वह काम का पूर्ण गुलाम है। सुअर और खरहों की भाँति वह सन्तान पैदा करता है और वे बच्चे संसार में भिखारियों की संख्या बढ़ाते हैं। पशुओं में भी आत्म-संयम है। अपनी बौद्धिकता की डींग मारने वाला मनुष्य ही स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करता है और इसमें वही दोषी है।

कम वेतन पाने वाले व्यक्ति को बड़े परिवार का पालन करने के लिए घूस आदि अवैधानिक व्यवसायों का सहारा लेना पड़ता है। उसकी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और धन जमा करने के लिए वह हर बुरे काम करने को उतारू हो जाता है। उसे ईश्वर की याद ही नहीं आती। काम-वासना की भयंकर लहर उसे बहा ले जाती है। वह अपनी पत्नी का दास बन जाता है। जब वह उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकता, तो उसके तीखे व्यंगों और कटु वचनों को मन मार कर सहता रहता है।

पश्चिम से आपने फैशन तथा पोशाक की बहुत-सी आदतें सीखी हैं। आप नकल करने वाले पशु बन बैठे हैं। पश्चिम में लोग तब तक विवाह नहीं करते, जब तक उनमें परिवार-पालन की योग्यता और शक्ति नहीं आ जाती। उनमें अधिक आत्म-संयम है। पहले वे अपने जीवन के लिए निर्वाह-साधन खोज निकालते हैं, तब धन-संग्रह करते हैं, बाद में जा कर विवाह करते हैं। वे संसार में भिखारियों की संख्या को बढ़ाना नहीं चाहते।

४. काम-वासना

काम-वासना का अर्थ किसी तीव्र लालसा से लगाया जाता है। किसी भी इन्द्रिय-व्यापार की बार-बार पुनरावृत्ति करने से वासना बहुत ही तीव्र और बलवान् हो जाती है। देश-भक्तों में देश-सेवा की लालसा रहती है। उत्तम कोटि के साधकों में आत्म-दर्शन की लालसा रहती है। कुछ लोगों में उपन्यास पढ़ने की लालसा रहती है और कुछ लोगों में आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ने की। किन्तु काम-वासना का साधारण अर्थ अधिकतर कामुक वृत्ति अथवा तीव्रतर स्त्री-पुरुष-भोगेच्छा से लिया जाता है। यह काम-तृप्ति के लिए सांसारिक तृष्णा है। मनुष्य की सम्भोग-वृत्ति उसे इन्द्रिय-भोगों की ओर सहज ही प्रेरित करती है।

काम-वासना प्रत्येक में मौजूद रहती है; पर छोटे बालकों और बालिकाओं में इसका स्वरूप बीज के समान रहता है। इसलिए इस वृत्ति से उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। वृद्ध पुरुषों और स्त्रियों में यह वृत्ति दब जाती है। यह अधिक उपद्रव नहीं करती है। तरुणावस्था में पदार्पण करने वाले युवकों और युवतियों के लिए ही यह वृत्ति अधिक उपद्रवी बन जाती है। वे इसके सामने निरुपाय बन जाते हैं।

राजसिक आहार तथा मांस-मछली, राजसिक आचार-विचार, राजसिक रहन-सहन, इत्र, सिनेमा, उपन्यास-पठन, विषय-वार्ता, कुसंगति, मद्यपान, सभी प्रकार के मादक द्रव्य, बीड़ी आदि काम-वासना को उत्तेजित करते हैं। पश्चिम के प्रख्यात डाक्टर बतलाते हैं कि वीर्य-क्षय से, विशेषकर युवावस्था में, बहुत से रोग पैदा होते हैं। शरीर में फोड़े-फुन्सी, गड़ी आँखें, पीला चेहरा, रुधिर की कमी, स्मरण-शक्ति का ह्रास, नेत्र-दृष्टि की कमी, मूत्र के साथ वीर्य का स्राव, अण्डकोषों की वृद्धि, अण्डकोष में दर्द, दुर्बलता, निद्रा, आलस्य, उदासी, हृदय-कम्प, श्वास में कठिनाई, मन की चंचलता, बुरे स्वप्न, स्वप्न-दोष आदि वीर्य-क्षय के ही परिणाम हैं। भारतीयों की औसत वायु २२ वर्ष की है, जब कि यूरोपवासियों की ५० वर्ष की है। मातृभूमि भारत के सभी शुभेच्छुकों को चाहिए कि वे इस चिन्ताजनक स्थिति पर विचार कर इसका उचित उपचार करने में प्रयत्नशील हों तथा विद्यार्थियों और गृहस्थियों में ब्रह्मचर्य को पुनः स्थापित करें।

माता-पिता, संरक्षक, शिक्षक तथा प्राध्यापक का यह कर्तव्य है कि वे अपने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा दें। युवक-शिक्षण का अर्थ है राष्ट्र-निर्माण।

५. ब्रह्मचर्य

मन, वचन तथा कर्म से अविवाहित जीवन व्यतीत करना ब्रह्मचर्य का व्रत है। इसका तात्पर्य न केवल उपस्थेन्द्रिय का दमन है, अपितु सारी इन्द्रियों का संयम होता है। ब्रह्मचर्य के अभ्यास से अच्छा स्वास्थ्य, आन्तरिक शक्ति, बल, मानसिक शान्ति और दीर्घ जीवन प्राप्त होते हैं। यह बल, शक्ति और प्राण की वृद्धि करता है। जीवन के दैनिक संघर्ष में कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति देता है। अमृतत्व प्राप्त करने का ब्रह्मचर्य ही आधार है। ब्रह्मचर्य से सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। इससे असीम बल, विशाल इच्छा-शक्ति, उत्तम विचार-शक्ति तथा स्मरण-शक्ति प्राप्त होते हैं।

जब आप किसी नाच पार्टी में उपस्थित होते हैं या जब 'मिस्ट्रीज आफ द कोर्ट आफ लन्दन' नामक पुस्तक का अध्ययन करते हैं, तब आपके मन की क्या दशा होती है? जब आप तीर्थ या मन्दिरों में जाते हैं अथवा अपने धर्म के आत्मोद्बोधक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं, तो आपकी मनोदशा किस प्रकार की होती है? इन दोनों मानसिक अवस्थाओं की तुलना कीजिए। स्मरण रखिए कि आत्मा का घोर पतन करने वाली कुसंगति से अधिक और कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य को स्त्रियों की चर्चा, धनी मनुष्यों के विलासमय जीवन, उत्तम भोजन, रेशमी वस्त्र, पुष्प, सुगन्ध आदि का मन में विचार ही नहीं लाना चाहिए; क्योंकि इससे मन को स्वभावतः उद्वेग होता है। मन विलासी पुरुषों के जीवन की नकल करने लगेगा। वासनाएँ उत्पन्न होने लगेंगी। अश्लील चित्र, असभ्य भाषण और प्रेम-कथाओं के उपन्यास कामोद्दीपक होते हैं। इनसे हृदय में दूषित, हेय और अवांछनीय भाव उत्पन्न होते हैं। परन्तु भगवान् के चित्र के दर्शन तथा धर्मग्रन्थों का श्रवण तुरन्त ही हृदय में हर्षाद्रक, मन में सुन्दर भाव और नेत्रों में प्रेमानन्दाश्रु पैदा करते हैं।

सुसंयमित नियमित जीवन बिताओ। नैतिक शक्ति ही आध्यात्मिक प्रगति का पृष्ठवंश है। नैतिक संस्कृति आध्यात्मिक साधना का अंग है। इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखो। मांस, मदिरा, स्त्रियों का सम्पर्क, जुआ, गप हाँकना, झूठ बोलना, स्त्रियों की ओर देखना, परस्पर हाथापाई

करना तथा दूसरों के साथ एक ही बिछौने पर सोना त्याग दो। विद्यार्थी को स्वप्न में वीर्य का क्षय नहीं होने देना चाहिए।

आजकल कालेज के विद्यार्थियों में आत्म-संयम नहीं है। विलासिता और संकीर्णता तो उनमें बचपन से ही प्रारम्भ हो जाती है। अभिमान, धृष्टता और अवज्ञा उनमें कूट-कूट कर भरे रहते हैं। सुन्दर आकर्षक पोशाक, अभक्ष्य भोजन, कुसंगति, नाटक-सिनेमा आदि ने उन्हें दुर्बल और कामुक बना डाला है। अर्वाचीन सभ्यता ने हमारे बालक-बालिकाओं को बिलकुल अशक्त बना दिया है। वे कृत्रिम जीवन यापन करते हैं। सिनेमा उनके लिए अभिशाप बन गया है। आजकल सिनेमाओं में रामायण और महाभारत की कहानियों के प्रदर्शन में भी अधिकतर असभ्य दृश्य तथा अश्लील अभिनयों का चित्रण होता है।

धार्मिक जीवन यापन के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव हो सकता है। सात्त्विक आहार कीजिए। कुसंगति का परित्याग कीजिए। प्रतिदिन कुछेक आसन और प्राणायाम कीजिए। मन को सदा किसी-न-किसी उपयोगी काम में लगाइए। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति प्रचुर मानसिक शारीरिक तथा बौद्धिक कार्य कर सकता है। वह अपने सभी अध्यवसायों में सदा सफल होता है।

६. धर्म और वेदान्त

ईश्वर को जानना तथा उसकी उपासना के प्रति श्रद्धा रखना ही धर्म है। यह क्लब में विचार का विषय नहीं है। यह सत् आत्मा का साक्षात्कार है। यह मनुष्य की गम्भीरतम आकांक्षा की परिपूर्ति है। धर्म सभी प्रकार के विधि और नियम से परे है। धर्म मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व को- उसके मस्तिष्क के गुण, हृदय के गुण तथा शारीरिक शक्ति को विकसित एवं प्रशिक्षित करने वाला हो। तभी पूर्णता की प्राप्ति हो सकती है। एकांगी विकास श्लाघनीय नहीं है।

मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्ध का स्पष्ट ज्ञान रखना सबके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। संसार के दार्शनिक, पैगम्बर, ऋषि, मुनि, विचारक, आचार्य और आध्यात्मिक महापुरुषों ने मनुष्य, ईश्वर और विश्व के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करने का प्रयास किया है। उन भिन्न-भिन्न दार्शनिकों की अलग-अलग व्याख्याओं के परिणाम स्वरूप अनेक दार्शनिक विचार-धाराओं का और विभिन्न प्रकार के मत-मतान्तरों का प्रादुर्भाव हुआ है।

वेदान्त के अन्तर्गत सभी धर्म आ जाते हैं। वह यह मानता है कि मोक्ष सबको मिल सकता है। प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष या आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर हो रहा है। नास्तिक, कट्टर भौतिकवादी तथा चार्वाक- मतावलम्बी भी, जो ईश्वर का अस्तित्व तक नहीं मानते, मोक्ष से विमुख नहीं होते; क्योंकि वे लोग उन लोगों की अपेक्षा आत्म-बोध और मानव-विकास की श्रेणी में कहीं अधिक ऊँचे उठे होते हैं जो अपने मस्तिष्क से कोई काम नहीं लेते और जिन्हें किसी नैतिक या धार्मिक प्रश्न का पता भी नहीं। वेदान्त आपको सिखाता है कि सबके साथ एकात्मता का अनुभव करो। वह किसी को किसी विशेष सम्प्रदाय में परिणत करना नहीं चाहता। वह सबको केवल यही

आदेश देता है कि अपने प्रति सच्चे रहो और मानव-विकास का चाहे जो मार्ग ग्रहण किये हुए हो, जहाँ भी हो, वहाँ से सत्य की खोज में अथक परिश्रम करते रहो।

वेदान्त वह निर्भीक शास्त्र है जो जीवन की एकता का पाठ पढ़ाता है। वह अधिकारपूर्वक यह घोषणा करता है कि जीव परमात्मा से अभिन्न है। केवल यही एकमात्र शास्त्र है, जो हिन्दू तथा मुसलमानों को, कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट को, आयरलैण्डवासी तथा अँगरेज को, जैन और पारसी को, सबमें एक ही आत्मा के आधार पर एक ही मंच पर मिला सकता है और उनके हृदय में भी मेल करा सकता है। केवल यही शास्त्र ऐसा है जिसे यदि ठीक-ठीक समझ लिया जाये और अभ्यास किया जाये तो सब प्रकार के मतभेद, कलह और संघर्ष का अन्त हो सकता है जो भिन्न-भिन्न राष्ट्रों और जातियों में चले आ रहे हैं।

जो दिव्य जीवन विश्व के एक अणु में रहता है, वही सारे मनुष्यों के हृदय में भी निवास करता है। चींटी की आत्मा मानव की आत्मा है। जो पापी की आत्मा है, वही सन्त की आत्मा है। जो भिखारी की आत्मा है, वही महान् शक्तिशाली सम्राट् की आत्मा है। हिन्दू की आत्मा और मुसलमान की आत्मा एक ही है। प्रकृति का परम सत्य ही मानवता का परम तत्त्व है। अपरोक्षानुभूति द्वारा इस आत्मा का साक्षात्कार करना आपके जीवन का परम लक्ष्य है।

सबके साथ एकता का अनुभव करो। सूर्य, आकाश, वायु, पुष्प, वृक्ष, पशु, पक्षी, पाषाण, सरिता, सरोवर और समुद्र-इन सबके साथ अपनी एकता मानो। जीवन की एकता -चैतन्य की अविच्छिन्नता अनुभव करो। सब कहीं एक ही सामान्य आत्मा को सब प्राणियों में, पशु-पक्षियों तथा वृक्ष-लतादिकों में देखो।

७. शान्ति

शान्ति जीवन्त सत्य है। हलचल, उपद्रव, संघर्ष तथा वाद-विवाद का अभाव ही शान्ति नहीं है। यह परिस्थितियों की वह अवस्था नहीं है जिसमें से सभी अवांछनीय वस्तुओं को निकाल दिया गया है। आप भले ही विषम परिस्थिति में पड़े हुए हों; आप आपत्ति, कष्ट, दुःख, क्लेश, कठिनाई तथा शोकों के बीच रहते हों, फिर भी यदि आप इन्द्रियों को विषयों से हटा कर, मन को शान्त कर और उसकी मलिनताओं को दूर कर ईश्वर के आश्रित हो जायें तो आप आन्तरिक सुख और शान्ति का उपभोग कर सकते हैं। उभरते हुए विचारों को शान्त कर और कामनाओं, स्पृहाओं तथा इन्द्रिय-लोलुपता को निकाल कर सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करो। घृणा, द्वेष, विषमता, संघर्ष तथा विनाश की तामसिक शक्तियों को दूर भगाओ। क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा- ये सब शान्ति के शत्रु हैं। सद्भाव, सहयोग, दया, करुणा, अहिंसा अथवा अप्रतिकार, क्षमाशीलता, सन्तोष, सज्जनता और विश्व-प्रेम को बढ़ाओ। यदि आप स्वार्थ और अहंकार को उन्मूलित कर लेंगे तो आप चिन्ता, भय और उत्तरदायित्व से मुक्त रहेंगे।

धनी पुरुषों के पास अतुल सम्पत्ति होती है। उन्हें सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं और जीवन उनके लिए सुगम होता है। उनके पास सुन्दर मोटर गाड़ियाँ, भव्य बँगले और वर्दीदार नौकर होते हैं। वे आनन्ददायक और स्वादिष्ट भोजन करते हैं और ग्रीष्मकाल में पर्वतों पर चले जाते हैं। फिर भी उनके चित्त को शान्ति नहीं मिलती। उनके जीवन में समरसता नहीं होती।

मनुष्य का सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य क्या है? इस बात से सभी सहमत हैं कि मनुष्य के सभी कार्यों का एकमात्र उद्देश्य परम शान्ति प्राप्त करना है।

शान्ति वह पूर्ण निस्तब्धता और निश्चेष्टता है जिसमें सारे मानसिक विकार, विचार, कल्पनाएँ, भाव, मुद्राएँ, पशुवृत्तियाँ आदि बिलकुल बन्द हो जाते हैं। यह वह तात्कालिक मानसिक शान्ति नहीं है जिसके लिए संसारी मनुष्य लम्बी यात्रा से श्रान्त हो जाने पर आराम करने के लिए बँगले में चले जाते हैं और जिसे वे साधारण भाषा में शान्ति के नाम से पुकारते हैं। सारी सांसारिक कामनाओं का अन्त हो जाना चाहिए। सारी इन्द्रियाँ पूर्णतः आपके संयम में हो जानी चाहिए और मन को शान्त कर देना चाहिए।

८. निःस्वार्थ सेवा

सामाजिक तथा धर्मार्थ संस्थाओं के द्वारा मानव-जाति की निःस्वार्थ सेवा, दरिद्रों को भोजन और वस्त्र-दान, दीनों से सहानुभूति, रोगियों की परिचर्या, दुःखियों को सान्त्वना देना, पतितों की सहायता करना, अनपढ़ों को विद्या-दान देना-इनमें किसी प्रकार के फल की इच्छा न रख कर यह भाव बनाये रखना कि आप भगवान् के हाथों में निमित्त-मात्र हो। ये सब कर्म निष्काम कर्मयोग के अन्तर्गत हैं जो चित्तशुद्धि का सबसे सुगम साधन है।

मानव-जाति की सेवा भगवान् की ही सेवा है। यदि आप भगवान् के इन प्रकट स्वरूपों से प्रेम नहीं कर सकते और उनकी सेवा नहीं कर सकते तो फिर आप संसार में भगवान् को और किसी स्थान में कैसे ढूँढ सकोगे ?

ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो कि दुःखी जनों के प्रति निश्चित, गम्भीर और सक्रिय सहानुभूति दिखलाते हैं। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत भरे पड़े हैं जो केवल मौखिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। क्रियात्मक निश्चित सहानुभूति वाला मनुष्य, जो-कुछ भी उसके पास होता है, दीन-दुःखियों को तुरन्त बाँट देता है। उसका हृदय बड़ा कोमल होता है। जैसे ही वह किसी विपत्तिग्रस्त मनुष्य को देखता है, उसका हृदय द्रवित हो जाता है। वह दुःखियों की वेदना को स्वयं ही अनुभव करने लगता है। जो केवल वाचिक सहानुभूति दिखाता है, वह पाखण्डी है।

अपने हृदय में प्रेम की ज्योति जगाओ। सबसे प्रेम करो। सर्वव्यापी, सर्वग्राही विश्व-प्रेम का विकास करो। अपने प्रत्येक कर्म को शुद्ध प्रेम से भर दो। कुटिलता, लोभ और स्वार्थ को दूर कर दो। द्वेष, क्रोध और ईर्ष्या निरन्तर प्रेमपूर्ण हृदय से सेवा करते रहने से दूर किये जा सकते हैं। दयापूर्ण कर्म करते रहने से आपको अधिक शक्ति, प्रसन्नता और सन्तोष प्राप्त होगा। आपसे सब प्रेम करेंगे। दया, दान और निःस्वार्थ सेवा से हृदय शुद्ध और कोमल बनता है।

देश-सेवा, समाज-सेवा, माता-पिता और साधु-सन्तों की सेवा-ये सब निष्काम कर्मयोग हैं। किसी संस्था, आश्रम, मठ, धार्मिक संस्था अथवा औषधालय में नित्य दो घण्टे निष्काम भाव से किसी प्रकार की सेवा करो। ऐसा भाव रखो कि सारा संसार परमात्मा का विराट् रूप है। सदा दूसरों की सेवा के लिए उद्यत रहो। सेवा करने में प्रसन्नता का अनुभव करो। सेवा के लिए अवसर

देखते रहो और अच्छी सेवा के लिए स्वयं क्षेत्र बनाओ। सेवा के फल की कभी अभिलाषा मत करो।

कर्मयोग के अभ्यास के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता नहीं है। यदि व्यय करने को विशेष धन नहीं है, तो आप अपने शरीर और मन से ही सेवा कर सकते हैं। यदि आपको सड़क के किनारे कोई दरिद्र रोगी पड़ा हुआ मिले, तो उसे थोड़ा दूध या जल पीने को दो। उत्साहपूर्ण शब्दों से उसे प्रसन्न करो। उसे ताँगे में बिठा कर निकट के अस्पताल में ले जाओ। परमात्मा धनी लोगों की दिखावटी आडम्बरपूर्ण सेवा से इतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि इस प्रकार की छोटी-छोटी सेवा से सन्तुष्ट होता है।

यदि किसी के शरीर में तीव्र पीड़ा हो रही है तो उसके पीड़ित अंग को धीरे-धीरे मलो। यदि आप सड़क पर किसी मनुष्य अथवा पशु के शरीर से रक्त बहता हुआ देखो तो पट्टी बाँधने के लिए कपड़ा ढूँढ़ते हुए इधर-उधर मत भागो, अपनी चादर, धोती या कमीज में से तुरन्त कपड़ा फाड़ लो-वह चाहे कितना ही मूल्यवान् क्यों न हो-और उसी से पट्टी बाँध दो। यह सच्चा कर्मयोग है। आपके हृदय को परखने की यही कसौटी है। आपमें से कितनों ने ऐसी उत्तम सेवा की है?

जब कभी आपका पड़ोसी या निर्धन मनुष्य रोग से पीड़ित हो तो उसके लिए अस्पताल से औषधि ला दो। सावधानी से उसकी सेवा-शुश्रूषा करो। उसके वस्त्र, बर्तन और कमोड आदि साफ कर दो। आपका मन समुन्नत होगा और तीव्र प्रेरणा प्राप्त होगी। इस प्रकार के कर्म आपको दया, करुणा, प्रेमादि सद्गुणों के विकास में और घृणा, द्वेष, ईर्ष्यादि के उन्मूलन में सहायक होंगे और आपको दिव्य बना देंगे। जब आप सड़क या बाजार में चलो तो थोड़े से खुले पैसे जेब में रखो और उन्हें गरीबों में बाँट दो। रेलवे के प्लेटफार्म पर कुलियों से झगड़ा मत करो। उदार बनो।

आपमें से प्रत्येक को रोग और उसकी चिकित्सा, प्रारम्भिक सहायता आदि का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान आपको बहुत सहायक होगा। यदि आपको यह ज्ञान हो जायेगा तो आप स्वयं अपनी और कुछ अंशों में दुःखी मानवता की सहायता कर सकेंगे। आकस्मिक संकट के समय डाक्टर की सहायता लेने से पूर्व यह आपका सहायक होगा। भगवान आपके हृदय में दुःखित मानव-समाज के कष्ट-निवारण और निःस्वार्थ सेवा के लिए उत्कट कामना उत्पन्न करें!

९. उपदेश या अनुशीलन की शक्ति

जिन उपदेशों से दूसरों को हानि पहुँचने की आशंका हो, उनका प्रचार मत करो। यदि करोगे तो इससे आप उनका अपकार ही करोगे। बोलने से पहले अच्छी तरह सोच और समझ लो । अध्यापकों और चिकित्सकों को अनुशीलन-विज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इसके प्रयोग से वे विद्यार्थियों को सफलतापूर्वक शिक्षा दे सकते हैं और उन्हें उन्नत बना सकते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बालकों में साहस और शौर्य भर दें। उन्हें ऐसा कहना चाहिए- "यह सिंह है। चित्र में सिंह को देखो। सिंह की भाँति दहाड़ो। साहसी बनो। शिवाजी, अर्जुन अथवा क्लाइव के चित्र को देखो। इनके समान ही शूरवीर बनो।" पाश्चात्य देशों के अध्यापक गण विद्यार्थियों को

युद्धक्षेत्र के चित्र दिखला कर कहते हैं- "जेम्स ! देखो! यह नेपोलियन का चित्र है। उसके शौर्य को देखो। क्या तुम सेनापति बनना नहीं चाहते ?" वे शैशवावस्था से ही बालकों के मन में साहस भर देते हैं। जब बालक बड़े होते हैं तो बाहरी प्रभावों से ये संस्कार उनमें और भी अधिक दृढ़ हो जाते हैं।

चिकित्सकों को अनुशीलन की विधि अच्छी तरह मालूम होनी चाहिए। सच्चे और सहानुभूतिपूर्ण चिकित्सकों का आज प्रायः अभाव है। अनुशीलन की विधि से अज्ञ चिकित्सक लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक पहुँचाते हैं। कभी-कभी वे रोगियों को अनावश्यक डर दिखा कर ही मार डालते हैं। थोड़ी-सी खाँसी हुई तो डाक्टर कहते हैं-"मित्र! आपको क्षयरोग है। आपको भवाली, कसौली अथवा मदनपल्ली में जाना चाहिए।" बेचारा रोगी भयभीत हो जाता है। यहाँ पर तो डाक्टर का कर्तव्य यह कहना है कि 'यह साधारण खाँसी है। तुम कल सबेरे स्वस्थ हो जाओगे। लो, यह औषधि सेवन करो।' डाक्टर के मुख से निकले हुए कोमल और उत्साहवर्धक शब्द रोगियों के लिए वरदान-स्वरूप हैं। ये शब्द पीड़ित रोगी में नव-बल, नवीन साहस और उत्साह का संचार करते हैं। किसी औषधि की सहायता के बिना ही रोगी इन मधुर शब्दों से ही ठीक होने लगता है। सम्भव है, डाक्टर आपत्ति उठायें- "स्वामी जी ! यदि हम ऐसा करने लगें तो हमारा व्यवसाय नहीं चलेगा। हमें अपना चिकित्सालय बन्द करना पड़ेगा। आपका कथन ठीक नहीं है। हम इसका अनुमोदन नहीं कर सकते।"

इस पर मुझे यह कहना है - यदि डाक्टर ऐसा व्यवहार करता है तो उसका व्यवसाय चमक उठेगा। वह अपने शहर का सर्वश्रेष्ठ डाक्टर बन जायेगा। दयालु और सहानुभूतिपूर्ण डाक्टर को लोग हजारों की संख्या में घेरे रहेंगे। वे उसके लिए अपने जीवन तथा सर्वस्व को उत्सर्ग करने को तैयार रहते हैं। वह प्रचुर सम्पत्ति संचय कर सकता है। लोग स्वेच्छा से हार्दिक प्रेम के साथ उसे प्रचुर धन देंगे। हे चिकित्सको ! इस नियम को व्यवहार में लाओ और देखो कि आपको धन मिलता है या नहीं।"

हम विचारों से पूर्ण संसार में रहते हैं। हमारे चरित्र का निर्माण, दूसरों से सम्पर्क के कारण, अनजाने में ही होता रहता है। जिनकी हम प्रशंसा करते हैं, उनकी क्रियाओं की हम अनजाने में ही नकल करते हैं। प्रतिदिन हम जिन-जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं, उनकी विचार-धारा को अपने में समाश्रित भी कर लेते हैं। साधारण विचारों से सम्पन्न व्यक्ति असाधारण विचारशील व्यक्ति के प्रभाव में आ जाता है।

घर का नौकर सदा अपने स्वामी की विचार-धारा के प्रभाव में रहता है। पत्नी अपने पति की विचार-धारा के प्रभाव में रहती है। रोगी डाक्टर की विचार-धारा के प्रभाव में रहता है। विद्यार्थी शिक्षक की विचार-धारा से प्रभावित रहता है। रीति-रिवाज इन विचार धाराओं के परिणाम हैं। क्या वस्त्र-धारण और क्या रहन-सहन अथवा भोजन या विहार सब-कुछ प्रभावशाली विचार-धाराओं के परिणाम ही हैं। जिस व्यक्ति को विचार-धारा के प्रभाव का ज्ञान है, वह जीवन में पूर्ण सफल होता है।

१०. विद्यार्थियों को उपदेश

१. प्रातः चार बजे उठ जाओ। सूर्योदय के समय तक न सोओ। प्रतिदिन अपना पाठ भली-भाँति पढ़ो।

२. आहार, खेल तथा शारीरिक व्यायाम में नियमित रहो।

३. अपने अध्यापक, माता-पिता तथा गुरु जनों की सेवा करो और उनका सम्मान करो।

४. अपने बराबर वालों से, अपने से छोटों से तथा नौकरों से प्रेम करो।

५. सहपाठियों से कभी झगड़ा न करो।

६. थोड़ा बोलो। नम्रता से, धीरे-धीरे प्रेमपूर्वक मधुर सम्भाषण करो।

७. बहुत सावधानी से वीर्य की रक्षा करो। इस अमूल्य शक्ति की एक बूँद भी कृत्रिम उपायों से नष्ट न करो।

८. ब्रह्मचर्य के द्वारा आप सारे संसार को जीत सकते हो।

९. सच्चा ब्रह्मचारी अपने सभी अध्यवसायों में सफल होता है।

१०. घर के तथा पड़ोस के रोगियों की सेवा करो।

११. सब पर अनुग्रह करो।

१२. बड़ी सावधानीपूर्वक सच्चरित्रता, स्मृति और स्वास्थ्य का विकास करो।

१३. प्रतिदिन सोने से पूर्व और सो कर उठने के अनन्तर पन्द्रह मिनट तक भगवान् से प्रार्थना करो।

१४. धारणा तथा गम्भीर विचार का अभ्यास करो।

१५. प्रतिदिन कम-से-कम निष्काम सेवा का एक काम करो।

१६. संस्कृत पढ़ने में कभी भी असावधानी न करो।

१७. प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता का एक श्लोक कण्ठस्थ करो।

१८. सिनेमा कभी न देखो।

१९. धूम्रपान तथा अन्य दुर्व्यसनों का परित्याग करो।

२०. समय नष्ट न करो। सदा काम में लगे रहो। व्यर्थ की संगति का त्याग करो।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप उपर्युक्त शिक्षाओं को व्यवहार में उतारेंगे तो आपकी जीवनचर्या सुन्दर होगी और आपको जीवन में महान् सफलता प्राप्त होगी। आपका व्यक्तित्व आकर्षक होगा।

११. विद्यार्थियों की दैनन्दिनी

निम्नांकित ढंग की एक दैनन्दिनी रखो। यह आपकी प्रगति और जीवन में त्वरित सफलता की प्राप्ति में आपको बहुत सहायता देगी। यह प्रतिदिन आपको अपने कर्तव्यों की याद दिलायेगी। यह आपको पथ-प्रदर्शक और शिक्षक का काम देगी।

१. सो कर कब उठे?

२. कितनी देर तक भगवान् की प्रार्थना की ?

३. क्या पाठशाला का कोई काम अवशेष है?

४. क्या आज आपने अपने माता-पिता और शिक्षक की आज्ञा भंग की ?

५. कितने घण्टे गप में या कुसंगति में बिताये ?

६. कौन-सी बुरी आदत को हटाने का प्रयास चल रहा है?

७. कौन-से गुण का विकास कर रहे हो?

८. कितनी बार क्रोध किया ?

९. क्या आप अपने वर्ग में समयनिष्ठ रहते हैं?

१०. आज कौन-सी निःस्वार्थ सेवा की?

११. क्या आज धूम्रपान किया? क्या सिनेमा देखा?

१२. क्या खेल और शारीरिक व्यायाम में नियमित रहे और कितने मिनट/घण्टे इसमें लगाये ?

१३. क्या अपने अन्तःकरण के विरुद्ध कोई कार्य किया?

१४. क्या किसी को मन, वचन और कर्म से हानि पहुँचायी ?

प्रतिदिन प्रत्येक प्रश्न के सामने अपना उत्तर तथा विवरण लिख दो। एक वर्ष के अनन्तर आप अपने में महान् परिवर्तन पाओगे। आप पूर्णतः रूपान्तरित हो जाओगे। दैनन्दिनी के पालन में

नियमित रहो। अपना दैनिक कार्यक्रम निश्चित कर लो और उसमें प्रार्थना, व्यायाम, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से निःस्वार्थ समाज-सेवा अथवा निर्धन विद्यार्थियों के अध्यापन आदि के लिए पर्याप्त समय निर्धारित करो। दैनिक कार्यक्रम और आध्यात्मिक दैनन्दिनी के पालन से आपकी आश्चर्यजनक रूप से उन्नति होगी।

षष्ठ अध्याय

स्वास्थ्य और व्यायाम

१. स्वास्थ्य और व्यायाम

अच्छा स्वास्थ्य आपकी सबसे बड़ी पूँजी है। स्वास्थ्य ही परम धन है। बल और स्वास्थ्य के बिना आप जीवन में सफलता और भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकते। यदि आप स्वस्थ नहीं हैं, तो आप जीवन का आनन्द नहीं उठा सकते। कुछ निश्चित नियमों के सम्यक् परिपालन से ही सुन्दर स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। जो लोग स्वास्थ्य-रक्षा में प्रमाद करते हैं, उन्हें बहुत दुःख झेलना पड़ता है और वे असमय में ही काल-कवलित होते हैं।

वह अमूल्य पदार्थ कौन-सा है जो जीवन को सुखमय बनाता है? वह स्वास्थ्य है। क्या आज आप **'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'** का गीत गायेंगे? चरक संहिता कहती है- **"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" "रोगास्तस्यापहर्तारो श्रेयसो जीवतस्य च।"**

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष साधन के लिए सर्वोत्तम कारण स्वास्थ्य है। यही जीव के कल्याण का भी कारण है। रोग इस स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले होते हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की ओर आपको सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। प्रकृति और स्वास्थ्य के नियमों को अवहेलनापूर्वक भंग नहीं किया जा सकता। जो इन नियमों की अवहेलना करते हैं, वे असाध्य रोगों के शिकार बने रह कर आनन्दहीन जीवन बिताते हैं।

संसार को अच्छे स्वास्थ्यपूर्ण युवक और युवतियों तथा दृढ़ और स्वस्थ नर-नारियों की आवश्यकता है। जिस भारतभूमि में भीष्म, भीम, अर्जुन, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, परशुराम और अनेक पराक्रमी वीर हुए थे, जिस भूमि पर वीरता, साहस तथा शक्ति-सम्पन्न अगणित राजा हुए थे, आज वही देश स्त्रैण नपुंसक के समान दुर्बल मनुष्यों से भरा पड़ा है। बालकों के भी सन्तान होने लगी है।

सारे स्कूलों तथा कालेजों में स्वास्थ्य-शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। इससे विद्यार्थियों का स्वास्थ्य-सुधार होगा। नित्य व्यायाम होना चाहिए। उन्हें खेलों में भी भाग लेना चाहिए। उन्हें स्वस्थ वायु का सेवन करना चाहिए। उन्हें थोड़े से सुगम आसनों का अभ्यास करना चाहिए; यथा- पद्मासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, वज्रासन, भुजंगासन, हलासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन। सुखपूर्वक, शीतली और भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए। विद्यालयों में कन्याओं को स्वच्छ वायु, खेल और स्वास्थ्य-शिक्षा के लिए सभी सुविधाएँ होनी चाहिए।

२. पद्मासन

पद्मासन का दूसरा नाम कमलासन भी है। पद्मासन में आसन की आकृति कमल के समान हो जाने से इसका नाम कमलासन पड़ा है। धारणा, ध्यान, जप तथा प्रार्थना के लिए यह सर्वोत्तम आसन है।

आसन पर बैठ कर टाँगों को सामने फैला दो। तब दाहिना पैर मोड़ कर बायीं जाँघ पर और बायाँ पैर मोड़ कर दाहिनी जाँघ पर रख लो। हाथों को घुटनों पर रख लो। दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर फँसा कर बायें पैर के टखने पर भी रख सकते हैं। साधारणतया बायाँ हाथ बायें घुटने पर और दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर रखते हैं।

३. सर्वांगासन

यह एक रहस्यपूर्ण आसन है, जिसके अभ्यास से आश्चर्यजनक लाभ होते हैं। इसे सर्वांगासन इसलिए कहते हैं, क्योंकि इस आसन को करते समय शरीर के सभी अंगों को व्यायाम करना पड़ता है।

एक मोटा कम्बल भूमि पर बिछा कर इस आसन का अभ्यास करना चाहिए। पीठ के सहारे चित लेट जाओ। अब धीरे-धीरे टाँगों को उठाओ। टाँगों के साथ-साथ कमर और धड़ यहाँ तक उठाओ कि सब एक-सीध में खड़े हो जायें। अब दोनों हाथों से कमर को पीछे से सहारा दे

कर रोक दो, जिससे कुहनियाँ भूमि पर टिकी रहें। ठोड़ी को छाती पर इस तरह लगा दो जैसे जालन्धर बन्ध में लगायी जाती है। शरीर को सीधा रखो, इधर-उधर हिलने-डुलने मत दो। पैर बिलकुल सीधे रखो। निर्धारित समय पूरा हो जाने पर बहुत धीरे-धीरे, बिना झटका दिये पैरों को नीचे लाओ।

इस आसन के करने में शरीर का सारा भार कन्धों पर पड़ता है। असल में कुहनियों और कन्धों के सहारे ही यह आसन किया जाता है। इस आसन को आप शाम-सबेरे-दोनों समय कर सकते हो। सर्वांगासन को दो मिनट से आरम्भ करके धीरे-धीरे दश मिनट तक बढ़ा देना चाहिए। इस आसन को समाप्त करते ही तुरन्त मत्स्यासन करना चाहिए। सर्वांगासन करने से गर्दन के पीछे जो पीड़ा होने लगती है, उसे मत्स्यासन दूर कर देता है और सर्वांगासन की उपयोगिता में वृद्धि करता है।

इस आसन से चुल्लिका नामक ग्रन्थि (Thyroid Gland) को बड़ा लाभ पहुँचता है। इसके स्वस्थ रहने से रक्त-संचार, श्वास-क्रिया, जठराग्नि और स्नायु-केन्द्र आदि अपना काम ठीक-ठीक करते हैं। सर्वांगासन के अभ्यास से गर्दन की मांसग्रन्थि स्वस्थ रहती है और उसके स्वस्थ रहने से शरीर के सारे अंग अपना सब काम सुचारु रूप से करते हैं।

इस आसन के करने से मेरुदण्ड-स्थित स्नायुओं के मूल में बहुत अधिक परिमाण में रक्त पहुँच जाता है। इस आसन से मेरुदण्ड लचीला हो जाता है। मेरुदण्ड के लचीले रहने का फल है, चिरस्थायी युवावस्था। इस आसन से बुढ़ापे की आफतें दूर होती हैं। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है। यह आसन बड़ा ही रक्तशोधक और स्नायुओं का बलदाता है।

४. मत्स्यासन

प्लाविनी प्राणायाम करते हुए इस आसन को करने से अभ्यास करने वाला जल में तैरता है। इसीलिए इस आसन का नाम मत्स्यासन पड़ा है। कम्बल बिछा कर पद्मासन पर बैठ जाओ। तब कम्बल पर चित लेट जाओ। दोनों बाँहों पर शिर रख लो। यह पहली स्थिति है।

शिर को पीछे की ओर इतना ले जाओ कि एक तरफ भूमि पर शिर मजबूती से ठहर जाये और दूसरी तरफ नितम्ब-भाग जमीन पर रहे। इस भाँति लेटने से शिर और नितम्बों के मध्य का शरीर पुल के डाट की तरह हो जायेगा। अब हाथों को या तो जाँघों पर रख दो या दोनों पैरों के अँगूठों को पकड़ लो। इस तरह आसन लगाने से गर्दन पर बहुत मरोड़ पड़ेगा।

मोटे व्यक्ति जिनके टखने बड़े मोटे हों जिसके कारण उनसे पद्मासन न लगता हो तो ऐसे लोग साधारण पलथी मार कर इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं। दश सेकण्ड से आरम्भ करके इस आसन का समय पाँच मिनट तक बढ़ाया जा सकता है। आसन कर चुकने के बाद हाथों के सहारे शिर को धीरे-धीरे ढीला करके बैठ जाओ और फिर पद्मासन खोल दो। इस आसन का अभ्यास सर्वांगासन के बाद ही करना चाहिए।

सर्वांगासन के अभ्यास से गर्दन और कन्धे जो कड़े पड़ जाते हैं, उनकी इस आसन से स्वाभाविक ही मालिश-सी हो जाती है। मत्स्यासन करते रहने से बहुत से रोग समूल नष्ट हो जाते

हैं। यह कोष्ठबद्धता को दूर करता है। मत्स्यासन के करने से सर्वांगासन का अधिक-से-अधिक फल मिलता है।

५. पश्चिमोत्तानासन

जमीन पर बैठ कर अपने पैरों को फैला कर लकड़ी की तरह कड़ा करो। उसके बाद पैरों के अँगूठों को हाथ के अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों से पकड़ो। ऐसा करने से धड़ को आगे झुकाना पड़ेगा। पहले साँस को निकाल दो, तब झुको। आप चेहरे को दोनों घुटनों के बीच में ले जा सकते हो। इस स्थिति में पाँच सेकण्ड तक रहो और तब धीरे-धीरे ऊपर उठो और हाथों को छोड़ दो।

इस आसन के अभ्यास से पेट की चर्बी कम हो जाती है। मोटापा तथा बढ़ी हुई तिल्ली और जिगर के लिए तो यह आसन अचूक दवा है। इस आसन के अभ्यास से मलबद्धता, यकृत की सुस्ती, वमन और मन्दाग्नि दूर हो जाते हैं। इससे पसलियाँ लचीली बनती हैं।

६. वज्रासन

यह आसन मुसलमानों के नमाज पढ़ने के समय के आसन से बहुत-कुछ मिलता है। पैर के तलवों को गुदा के दोनों ओर रखो अर्थात् दोनों जाँघों को दोनों टाँगों पर रखो और नितम्बों को तलवों पर। अँगूठे से ले कर घुटने तक का भाग जमीन को छूता रहे। शरीर का सारा बोझ घुटनों और टखनों पर पड़ता है। दोनों हाथों को सीधे घुटनों पर रखो। घुटने बिलकुल पास रखो। इस प्रकार धड़, गर्दन और शिर एक सीधी रेखा में करके बैठो। यह आमाशय के सारे विकारों को दूर करता और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

७. भुजंगासन

जमीन पर कम्बल बिछा कर पीठ को ऊपर कर मुँह के बल लेट जाओ। सब पेशियों को ढीला छोड़ दो। आराम से पड़े रहो। हथेलियों को ठीक कन्धों के नीचे जमीन पर रखो। शरीर को, शिर से पैर के अँगूठे तक जमीन छूता रहने दो। जिस प्रकार साँप फन उठाता है, ठीक उसी प्रकार धीरे-धीरे शिर और शरीर के ऊपरी भाग को ऊपर उठाना प्रारम्भ करो। रीढ़ को पीछे की ओर झुकाओ। अब शिर को फिर धीरे-धीरे नीचे झुका कर पहली अवस्था में लाओ। इसे छह बार दोहराओ। यही भुजंगासन है।

कोष्ठबद्धता, पीठ का दर्द तथा कमर का दर्द दूर करने के लिए यह बहुत उत्तम आसन है। भुजंगासन और सर्वांगासन बहुत ही सरल और प्रभावशाली आसन हैं।

८. हलासन

जमीन पर एक कम्बल बिछा लो। पीठ के सहारे चित लेट जाओ। दोनों हाथ बगलों में इस प्रकार सीधे रहें कि हथेलियाँ जमीन छूती रहें। अपनी दोनों टाँगों को सटा दो। अब धीरे-धीरे अपनी दोनों टाँगों को उठाओ। पैर मुड़ने न पायें। इसके करने की विधि सर्वांगासन के समान ही है; परन्तु इसमें पैरों को शिर की ओर ला कर इतना झुकाना होता है कि पैरों के अँगूठे जमीन छू लें। टाँगें और जाँघे एक-सीध में रहनी चाहिए। ठोड़ी छाती से लगी रहनी चाहिए। इस समय नाक से धीरे-धीरे साँस लेते रहो। इस प्रकार जब पैर के अँगूठे जमीन का स्पर्श करें, तब धीरे-धीरे हाथों को अपनी जगह से हटा कर उनसे पैर के अगूंठों को पकड़ लो। इस आसन को करते समय शरीर की आकृति किसान के हल की तरह हो जाती है। इसी से इसका नाम हलासन पड़ा है।

इस आसन से मेरुदण्ड-स्थित स्नायुमूलों, मेरुदण्ड की रज्जु और पीठ की मांसपेशियों में बड़ी मात्रा में रक्त का संचार होता है, जिससे वे सब अच्छी तरह पुष्ट हो जाते हैं। इस आसन के करने से मेरुदण्ड बड़ा मुलायम और लचीला हो जाता है। हलासन के अभ्यास से शरीर बहुत ही लचीला, फुर्तीला और चपल हो जाता है। इसके अभ्यास से वे सभी लाभ प्राप्त होते हैं जो कि सर्वांगासन से होते हैं। यह चिरकालिक मन्दाग्नि, यकृत और प्लीहा रोग में विशेष लाभदायी है।

९. अर्धमत्स्येन्द्रासन

पश्चिमोत्तानासन और हलासन से रीढ़ आगे की ओर मुड़ती है। धनुरासन और भुजंगासन रीढ़ को पीछे की ओर मोड़ते हैं। अर्धमत्स्येन्द्रासन करने पर रीढ़ पर बगल में झुकाव पड़ता है।

पैरों को फैला कर सीधे बैठो। बायें पैर की एड़ी को गुदा-द्वार पर रखो। दाहिने पैर की एड़ी को बायें घुटने के दूसरी ओर जमीन पर रखो। अब दायें घुटने को ऊपर उठा कर बायीं काँख से लगा दो और बायें हाथ से दाहिने पैर के अगूंठे को पकड़ो। अब शरीर को अच्छी तरह मोड़ो और दायें हाथ को पीठ की ओर जितना हो सके, ले जाओ और बायीं जंघा को पकड़ने का प्रयास करो। रीढ़ को मरोड़ सकने पर ही इस आसन का अभ्यास किया जा सकता है। इस आसन में पाँच सेकण्ड रहो। इस प्रकार दूसरी ओर भी करो।

यह रीढ़ को लचीला बनाता है और पेट के अंगों को मलता है। दुबले लोगों के लिए यह बहुत ही उत्तम आसन है।

१०. शिथिलीकरण

प्रातः, दोपहर और सायंकाल को कम-से-कम दश मिनट के लिए शरीर और मन को पूर्णतः शिथिल कर दो। आरामकुर्सी पर बैठ जाओ या बेंच अथवा चटाई पर लेट जाओ। सारी मांसपेशियों को ढीला छोड़ दो। नेत्र बन्द कर लो। मन को शून्य बना लो। एक ओर को करवट ले

कर जितना हो सके, शिथिल हो जाओ। किसी अंग में खिंचाव न डालो। फिर दूसरी ओर करवट ले कर शिथिल हो जाओ। सोते समय सभी स्वभावतः ऐसा करते हैं।

व्यायाम के बाद शिथिलीकरण आवश्यक है। इससे शरीर तथा मन-दोनों को ही आराम मिलता है। मांसपेशियों का तनाव दूर हो जाता है। इससे नव-स्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

११. सुखपूर्वक प्राणायाम

प्राण और शरीर की शक्ति प्राणायाम द्वारा संचित होती है। प्राणायाम का उद्देश्य प्राण को नियन्त्रित करना है। प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त करने से मन का निग्रह भी हो जाता है। प्राणायाम से समस्त शरीर तथा अंगों का व्यायाम हो जाता है। प्राणायाम से स्वास्थ्य उत्तम और मन निर्मल हो जाता है।

पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठ जाओ। दाहिने अँगूठे से दाहिनी नासिका को बन्द करो। बायीं नासिका से बहुत ही धीरे-धीरे श्वास खींचो। दाहिने हाथ की कनिष्ठा तथा अनामिका उँगलियों से बायीं नासिका को बन्द करो। जितनी देर तक सुखपूर्वक हो सके, श्वास रोके रखो। अब अगूंठे को हटा कर बहुत ही धीरे-धीरे दायीं नासिका से श्वास छोड़ो। अब आधी क्रिया समाप्त हो गयी। इसी प्रकार दायीं नासिका से श्वास खींचो। पूर्ववत् श्वास को रोको और बायीं नासिका से बहुत ही धीरे-धीरे श्वास को छोड़ो। इन छह क्रियाओं का एक प्राणायाम बनता है।

सुखपूर्वक प्राणायाम से शरीर बलवान् और स्वस्थ बनता है। मोटापा दूर होता है। मुख पर कान्ति और नेत्रों में ज्योति बढ़ती है। गले और स्वर में मधुरता आ जाती है। ब्रह्मचर्य-पालन में यह अत्यन्त सहायक होता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। नाड़ी शुद्ध होती है।

१२. शीतली प्राणायाम

जिह्वा को होठों के बाहर निकाल करके नली की भाँति मोड़ लो। सिसकारी भरते हुए मुँह से भीतर श्वास खींचो और आराम से जितनी देर हो सके, वायु भीतर रोके रहो। फिर दोनों नासारन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालो। प्रातःकाल पन्द्रह से तीस बार इसका अभ्यास करो। यह प्राणायाम पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन पर या चलते-फिरते एवं खड़े हो कर किया जा सकता है।

इससे रुधिर शुद्ध होता है। भूख और प्यास कम होती है और अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं।

१३. भस्त्रिका

संस्कृत शब्द भस्त्रिका का अर्थ भाथी या धौंकनी है। भाथी की तरह से जोर-जोर से जल्दी श्वास लेना और निकालना भस्त्रिका प्राणायाम है।

पद्मासन पर बैठ जाओ। शरीर और गर्दन को एक-सीध में रखो। मुँह को बन्द कर लो। लुहार की भाथी की भाँति दश बार तीव्र गति से श्वास खींचो और बाहर निकालो। बारम्बार छाती को फैलाओ और सिकोड़ो। इस प्राणायाम के समय सिसकार का शब्द होता है। एक के अनन्तर एक श्वास लेते जाओ और निकालते जाओ। बीच में रुको नहीं। जब श्वास निकालने की निश्चित संख्या पूरी हो जाये, तो अन्तिम बहिष्करण (रेचक) के बाद अधिक-से-अधिक गहरी श्वास लो। सुविधापूर्वक जितने समय तक हो सके, श्वास को रोको, तब गम्भीरतम श्वास बाहर निकालो। इस प्रकार एक प्राणायाम हुआ। सायं-प्रातः इसे तीन-चार बार करना चाहिए।

इससे गले की सूजन दूर होती है। नाक और छाती की व्याधियाँ नष्ट होती हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। कफ का विकार नष्ट होता है। इससे शरीर को गर्मी पहुँचती है। इसका अभ्यास करने वाला सदा स्वस्थ रहता है।

१४. स्वास्थ्य और बल

स्वास्थ्य शास्त्र का नियम न भूलो।
स्वास्थ्य की रक्षा विधि से कर लो।
रोग-निवृत्ति से संयम हितकर।
तन में रोग न करने दो घर।।
रोग है परम शत्रु स्वास्थ्य का।
स्वास्थ्य है साधन ईश प्राप्ति का।
सबल स्वस्थ निज तन को रख लो।
इक उपवास माह में रख लो।
दूध और फल पर चाहे रह लो।।
जो कुछ खाओ, खूब चबाओ।
मादक वस्तु के पास न जाओ।
भोजन तुला हुआ नियमित हो।
भोजन अति सात्त्विक परिमित हो।।
रात्रि शयन में देर न करना।
पहर रात रहते उठ जाना।
मलावरोध होने नहिं देना।
नियम प्रकृति का पालन करना।
प्रातः स्नान शीतल जल से करना।
पहर रात गये पेट न भरना।।
प्रातःकाल धूप का सेवन ।
खुली वायु में कीजे धावन ।
खूब टहलना, कसरत करना।
आसन प्राणायाम भी करना।।
लक्षण रोग निदान समझ लो ।
अपना वैद्य स्वयं ही बन लो।
अपने तन का रोग समझ लो।

दूर हटा कर सुख से रह लो।
सेवा दीन–हीन रोगी की।
अमिय भूरि है चित्तशुद्धि की ।।
जीवन शुद्ध सरल सात्त्विक हो।
किन्तु विचार उन्नत परमार्थिक हो।
ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना।
हरि सुमिरण जप ध्यान भी करना।
नियमित जो तुम इसे करोगे।
शाश्वत सुख अमरत्व लहोगे।

१५. दिव्य आह्वान

पुण्यभूमि भारत के बच्चो
छात्रवृन्द हे पाठ–भवन के
तुम्हीं देश के तारे आशा
सबल चरित्र शरीर बना लो।
जागृत कर लो धर्म–भावना
क्ति–भाव उर बीज जगाओ
न लो सच्चा योगी ज्ञानी
कहाँ सांख्य सक्रिय जीवन बिन ?
सेवा करो दीन दुःखियों की
धर्म सनातन अपना रख लो
रक्षा करो शास्त्र अबला की
पढ़ो शास्त्र तुम, शास्त्र सिखाओ।
दिव्य बनो तुम पावन रह के
न्यायशील धार्मिक सच्चे तुम
चलो सत्य की लिये पताका
तुम ज्वलन्त योगी–सा रह लो।
करो न निन्दा किसी धर्म की
ले कर सार सभी धर्मों का
सभी सन्त का आदर कर लो
हो समदृष्टि उदार तुम्हारी ।।

परिशिष्ट

१. विद्यार्थी-जीवन का महत्त्व

प्रिय अमृत पुत्र!

आप मातृभूमि की भावी आशा हैं। आप कल बनने वाले नागरिक हैं। आपको सर्वदा जीवन के लक्ष्य पर विचार करना चाहिए और उसे प्राप्त करने के लिए ही जीवन बनाना चाहिए। जीवन का लक्ष्य है सर्व दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति अथवा कैवल्यपद की प्राप्ति या जन्म-मरण से छुटकारा।

सुव्यवस्थित नैतिक जीवन यापन कीजिए। नैतिक बल आध्यात्मिक उन्नति का पृष्ठवंश है। चारित्र्य-गठन आध्यात्मिक साधना का एक मुख्य अंग है। ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। पूर्वकालिक अनेक ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के पालन से अमृतत्व प्राप्त किया था। यह नवीन शक्ति, वीर्य, बल, जीवन में सफलता और जीवन के उपरान्त नित्य सुख का स्रोत है। वीर्य के नाश से रोग, क्लेश और अकाल मृत्यु प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए वीर्य-रक्षा के लिए विशेष सावधान रहो।

ब्रह्मचर्य के अभ्यास से अच्छा स्वास्थ्य, आन्तरिक शक्ति, मानसिक शान्ति और दीर्घ जीवन प्राप्त होते हैं। यह मन और स्नायुओं को सबल बनाता है; शारीरिक और मानसिक शक्ति के संचय में सहायता देता है। यह बल और साहस की वृद्धि करता है। इससे जीवन के दैनिक संग्राम में कठिनाइयों का सामना करने के लिए बल प्राप्त होता है। पूर्ण ब्रह्मचारी विश्व पर शासन कर सकता है। वह ज्ञानदेव के समान पंचतत्त्वों तथा प्रकृति को नियन्त्रित कर सकता है।

वेदों में तथा मन्त्रों की शक्ति में श्रद्धा बढ़ाओ। नित्यप्रति ध्यान का अभ्यास करो। सात्त्विक भोजन करो। पेट को ठूँस-ठूँस कर मत भरो। अपनी भूलों के लिए पश्चात्ताप करो। मुक्त-हृदय से अपनी भूलों को स्वीकार करो। झूठ बोल कर या बहाना बना कर अपनी भूल को छिपाने की कभी चेष्टा मत करो। प्रकृति के नियमों का पालन करो। नित्यप्रति खूब शारीरिक व्यायाम करो। अपने कर्तव्यों का पालन यथा-समय करो। सरल जीवन और उन्नत विचारों का विकास करो। वृथा अनुकरण करना छोड़ दो। कुसंगति से जो बुरे संस्कार बन गये हों, उनकी काया-पलट कर दो। उपनिषद्, योगवासिष्ठ, ब्रह्मसूत्र, श्री शंकराचार्य के ग्रन्थ तथा अन्य शास्त्रों का स्वाध्याय करो। इनसे आपको वास्तविक शान्ति और सान्त्वना प्राप्त होगी। कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों ने यह उद्‌गार प्रकट किया है : "जन्म और धर्मानुसार हम ईसाई हैं; किन्तु जिस शान्ति को हमारा मन चाहता है, वह शान्ति उपनिषदों के अध्ययन से ही मिल सकती है।"

सबके साथ मिल कर रहो। सबसे प्रेम करो। अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करो और निःस्वार्थ सेवा का भाव विकसित करो। अथक सेवा के द्वारा सबके हृदय में प्रवेश करो। अद्वैत-प्रतिपादित आत्मा की अभिन्नता के साक्षात्कार का यही उपाय है।

२. आध्यात्मिक शिक्षा का महत्त्व

प्रिय अमर आत्मन् !

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप लोगों में से बहुतों ने दिव्य जीवन संघ की परीक्षा में भाग ले कर आध्यात्मिक शिक्षा में अपनी बहुत ही रुचि प्रदर्शित की है। पारितोषिक-वितरण के इस शुभ अवसर पर आप सबको यह छोटा-सा सन्देश भेजने में मुझे अतीव हर्ष हो रहा है।

प्रिय छात्र गण! आज के स्कूल तथा कालेजों की धर्मनिरपेक्ष शिक्षा तथा हमारे ऋषियों की प्राचीन शिक्षा के अन्तर पर ध्यान दो। देखो ! ऋषि गण किस प्रकार सत्य के दिव्य उद्‌घोष के साथ उपनिषदों को आरम्भ करते थे। छान्दोग्य उपनिषद् की उक्ति है : "आरम्भ में एकमेव सत् ही था।" ईशावास्योपनिषद् की प्रारम्भिक पंक्ति है : "यह अखिल विश्व ईश्वर से ही अन्तर्व्याप्त है। नामरूपों का निराकरण कर आत्मा में ही आनन्द प्राप्त कीजिए। किसी की सम्पत्ति का लोभ न कीजिए।" मेरे प्रिय नवयुवको! आज के स्कूल तथा कालेजों में ऐसी शिक्षा कहाँ है?

यह शोचनीय है कि भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली आध्यात्मिक विकास के लिए अहितकर है। विद्यार्थियों के हृदय एवं मस्तिष्क भौतिकवाद से भरे रहते हैं। नवयुवको! आप शास्त्र तथा अपने धर्म के अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय पूर्ण श्रद्धा और भक्ति के साथ करो।

देखो! पूर्वकालीन ऋषि अपने शिष्यों को कैसे स्वर्णिम उपदेश देते थे-"सत्य बोलो। धर्माचरण करो। वेदों के स्वाध्याय में प्रमाद मत करो। सत्य से मत डिगो। धर्म से मत हटो। अपने कल्याण से मत चूको। देवताओं और पितरों के प्रति अपने कर्तव्य में प्रमाद मत करो। माता को देवता समझो। पिता को देवता समझो। आचार्य को देवता समझो। अतिथि को देवता समझो। कलंक-रहित कर्म करो, दूसरे नहीं। सत्कर्म करो। श्रद्धा, आनन्द और विनय-सहित दान करो।"

भौतिकवादी सभ्यता की भद्दी नकल करना छोड़ दो। सच्ची भारतीय संस्कृति को अपने आचार में व्यक्त करो। आजकल विद्यार्थियों ने अपने माता-पिता की सेवा, गुरु जनों का सम्मान, सदाचार तथा सन्ध्या-वन्दन को भुला दिया है। उनके मन में विलासिता का विष भरा हुआ है। उनका तो सिद्धान्त यही हो गया है : "खाओ, पियो और मौज उड़ाओ।" बेचारे भ्रान्त जीवो! कब तक इस अवस्था को बनाये रखोगे? आत्मा की हत्या मत करो। उठो ! जागो ! अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाओ। नियमित रूप से सन्ध्या करो। श्रद्धापूर्वक उपासना करो और दिव्य वैभव को प्राप्त करो।

मेरे प्रिय विद्यार्थियो ! देश की आशा और यश की मूर्तियो! अपने नेत्र खोलो! अभिमानी मत बनो। ईश्वर और मन्त्रों की शक्ति में विश्वास बढ़ाओ। 'जपयोग' पुस्तक पढ़ो। रामायण, महाभारत, गीता और भागवत का स्वाध्याय करो। सात्त्विक भोजन करो। पेट को 2/(8H) - 2/(8H) कर मत भरो। बीस आध्यात्मिक नियमों का पालन करो। आध्यात्मिक विषयों में गहरी रुचि लो। आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो। जब आप बड़े हों, तो सच्चे भक्त और योगी बनें और आध्यात्मिक ज्ञान और प्रकाश को सारे देश में विकीर्ण करें।

आप सब दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण हों! आप सब साक्षात्कार-प्राप्त सन्त तथा कर्मयोगी बनें और मानवता की सेवा में आनन्द लें! भगवान् आपको सभी कामों में सफलता प्रदान करें! भगवान् श्री ललिता प्रसाद जी तथा शिक्षकों पर अपने आशीर्वाद की वृष्टि करें जिन्होंने इस प्रशंसनीय परीक्षा की योजना के सम्बन्ध में घोर श्रम किया है! मैं सबको हार्दिक बधाई देता हूँ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

३. चरित्र का महत्त्व

प्रिय अमर आत्माओ !

आपको अपना चरित्र ठीक बनाने में पूरी चेष्टा करना उचित है। आपका सारा जीवन और जीवन की सफलता आपके चारित्र्य-गठन पर निर्भर करता है। संसार के सारे महान् पुरुषों ने केवल चारित्र्य के बल से ही महत्त्व प्राप्त किया है। संसार की देदीप्यमान् प्रोज्वल आत्माओं ने यश, ख्याति और सम्मान केवल चरित्र के द्वारा ही प्राप्त किया है।

स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन तथा भौतिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक समस्त क्षेत्रों में सम्पूर्ण सफलता का रहस्य केवल वीर्यरक्षा है। धन्वन्तरि ने जब अपने शिष्यों को सम्पूर्ण आयुर्वेद पढ़ा दिया, तो उन सबने इस विज्ञान की कुंजी पूछी। धन्वन्तरि ने उत्तर दिया : "मैं आपसे कहता हूँ कि निःसन्देह ब्रह्मचर्य ही एक अमूल्य रत्न है। यह एकमात्र अमोघ औषधि, नहीं-नहीं अमृत है, जो रोग, क्षय और मृत्यु को नष्ट करता है। शान्ति, कान्ति, स्मृति, विद्या, स्वास्थ्य और ईश्वर-दर्शन के लिए मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, क्योंकि यही सर्वोच्च धर्म है। ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा बल है। आत्मा अथवा परमात्मा का रूप ब्रह्मचर्य ही है और यह आत्मा ब्रह्मचर्य में ही निवास करती है। सबसे पहले ब्रह्मचर्य को ही प्रणाम करके मैं असाध्य रोगियों को भी स्वस्थ और निरोग कर देता हूँ। हाँ, ब्रह्मचर्य समस्त दोषों को दूर कर सकता है।"

मेरे प्रिय नवयुवको! देश की आशा और यश की मूर्तियो! अपनी आखें खोलो। अब जाग जाओ। चतुर बनो। कुसंग से बचो। स्त्रियों से विनोद-परिहास मत करो। इस बुरी आदत को तुरन्त छोड़ दो। यदि यह अभ्यास नहीं छोड़ोगे, तो अपना सर्वनाश कर लोगे। शुद्ध दृष्टि का अभ्यास करो। अब तक आप अन्धे बने हुए थे; परन्तु अब तो प्रकाश मिल गया। देखो! प्रार्थना करो। आप विघ्न-बाधाओं को जीत लोगे।

सद्‌गुणों का विकास करो। शक्ति संग्रह करो। सच्चे हृदय और तीव्र लगन से भगवत्प्राप्ति की इच्छा करो। लक्ष्य को मन के सामने रखो। वेदों में और मन्त्र-शक्ति में विश्वास रखो। नित्य सन्ध्या और गायत्री का जप करो। ध्यान करो। इसकी (ध्यान की) सामर्थ्य और शक्ति को समझो और प्राप्त करो। किसी-न-किसी प्रकार की उपासना करो और आत्म-ज्योति प्राप्त करो। अपनी खोयी हुई दिव्यता को पुनः हस्तगत करो।

भगवत्कृपा से आपके मुखों पर दिव्य तेज का प्रकाश उदित हो! ज्योति-स्वरूप परमात्मा आपकी बुद्धि को सन्मार्ग दिखलाये ! आप सब श्री श्रीनिवास राघवाचार्य के शुभ कार्य में हृदय और मन से पूर्ण सहयोग दें और इस शाखा को सक्रिय केन्द्र बनायें, जहाँ से शान्ति, सुख और परमानन्द चतुर्दिक् विकीर्ण हो! दिव्य शक्ति और शान्ति सदा आपमें निवास करें!

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

४. जीवन मूल्यवान् है

प्रिय साधक गण!

दिव्य जीवन संघ की फैजाबाद शाखा के 'युवक विभाग' के उद्‌घाटन के अवसर पर आप लोगों को यह छोटा-सा सन्देश भेजने में मुझे अतीव हर्ष हो रहा है।

आपको अपना चरित्र ठीक बनाने में पूरी चेष्टा करनी चाहिए। आपका सारा जीवन और जीवन की सफलता आपके चरित्र गठन पर निर्भर करता है। संसार के सारे महान् पुरुषों ने केवल चारित्र्य-बल से ही महत्त्व प्राप्त किया है। संसार की देदीप्यमान् उज्ज्वल आत्माओं ने यश, ख्याति और सम्मान केवल चरित्र के द्वारा ही प्राप्त किया है।

दूसरों की निन्दा न करो। अपना समय नष्ट न करो। सत्य बहुत मूल्यवान् है। अपने हृदय के आराध्यदेव भगवान् को न भुलाओ। वाणी, कर्म अथवा विचार से किसी को हानि मत पहुँचाओ। सदा सत्संग का सेवन करो। सद्‌गुणों का विकास करो। अपनी शक्ति का संचय करो। साक्षात्कार-प्राप्ति की सच्ची और ज्वलन्त कामना रखो। आदर्श को सदा अपने मन के सामने रखो। नित्यप्रति सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करो। मानवता की आत्म-भाव से सेवा करो। सभी प्राणियों के प्रति समदृष्टि रखो। चित्तशुद्धि प्राप्त करो और क्रोध तथा अहंकार से मुक्त बनो। जिह्वा निरन्तर प्रभु के नाम का उच्चारण करे। नेत्र भगवान् की मधुर मूर्ति के दर्शन करें। कान उन प्रभु की अलौकिक लीलाओं को श्रवण करें। आपके हाथ दिन-रात उनकी सेवा में लगे रहें। भगवान् के निष्कपट प्रेम और निष्काम भक्ति से बढ़ कर इस संसार में अन्य कोई भी सम्पत्ति नहीं है।

समदृष्टि ही ज्ञान की परख है। निष्कामता ही धर्म की परख है। ब्रह्मचर्य ही सदाचार की परख है। एकता ही आत्म-साक्षात्कार की परख है। नम्रता ही भक्ति की परख है। अतः निःस्वार्थ, नम्र तथा शुद्ध बनिए। समदृष्टि का विकास कीजिए। असीम के साथ एक बन जाइए।

हे मित्र! जागिए। अधिक न सोइए। ध्यान कीजिए। ब्राह्ममुहूर्त की बेला है। प्रेम की कुंजी से हृदय-मन्दिर के द्वार खोलिए। आत्म-संगीत का श्रवण कीजिए। अपने प्रियतम को प्रेम-संगीत सुनाइए। असीम की तान छेड़िए। उनके ध्यान में अपने को विलीन कर डालिए। उनके साथ एक बन जाइए। प्रेम तथा आनन्द के सागर में निमग्न हो जाइए।

५. सेवा के लिए जीवन बितायें

मुझे 'ऐम्बुलेंस कोर' को यह सन्देश भेजने में अतीव हर्ष हो रहा है; क्योंकि मुझे इस प्रकार के सेवा-कार्यों में विशेष रुचि है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने तथा उसे उन्नत बनाने में निष्काम सेवा बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती है, आपके अन्दर साहस भरती है तथा तात्कालिक आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए निष्काम सेवा निश्चय ही बहुत आवश्यक है। सफल जीवन की प्राप्ति में आप लोगों का यह प्रयास निश्चय ही ठीक दिशा में है।

'बाम्बे ऐम्बुलेंस' अपनी कई विशेषताओं के कारण एक अनुपम संस्था है। गत चौदह वर्षों में इसने बहुत ही उल्लेखनीय सेवाएँ की हैं। निश्चय ही यह बम्बई निवासियों के लिए वरदान-स्वरूप है।

आवश्यक सद्गुणों के विकास के लिए कर्मयोग का अभ्यास बहुत ही आवश्यक है। कर्मयोग के अभ्यास से ही इनका विकास सम्भव है। इन गुणों से सम्पन्न हुए बिना कोई भी व्यक्ति भगवद्-साक्षात्कार अथवा वेदान्त की एकता की भावना की प्राप्ति की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता। सहनशीलता, दया, करुणा आदि प्रयोजनीय गुण हैं। कर्मयोग के अभ्यास से ही इन गुणों का विकास सम्भव है। नये हीरों को, इसके असली प्रकाशपूर्ण रंग लाने से पूर्व भली-भाँति काटने, पालिश करने तथा खरादने की आवश्यकता होती है। इसी भाँति नये साधकों को लगातार रगड़ खाने अथवा भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आने की आवश्यकता होती है। यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह सब लोगों को प्रसन्न रख सकता है, यदि वह नगर की चहल-पहल में भी अपनी मुख-मुद्रा को प्रसन्न बनाये रख सकता है तथा गम्भीर ध्यान और समाधि में प्रवेश कर सकता है तो स्पष्ट है कि वह बाह्य परिस्थितियों से ऊपर उठ चुका है तथा मन की समता में स्थित हो गया है।

जब पास-पड़ोस के लोग कष्ट और पीड़ा से कराह रहे हों, जब लोगों का प्राण-संकट उपस्थित हो, उस समय दृढतापूर्वक बन्द कमरे में आँखें बन्द करके बैठना कोई सच्ची साधना नहीं है। जो एक असहाय मनुष्य की उसकी मरणासन्न अवस्था में सेवा करता है, वह बन्द कमरे में बैठ कर ध्यान करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक साधना करता है। यदि वह एक घण्टा सेवा करता है तो वह छह घण्टे ध्यान करने के समान है। सेवा में किसी प्रकार की हानि नहीं है। एक दयालु डाक्टर, जो बिना फीस लिये ही एक असहाय निर्धन रोगी की अर्धरात्रि में शुश्रूषा करता है, वह उस ध्यानयोगी से सहस्रों गुणा अच्छा है जो एक निर्धन क्षुधार्त प्राणी को मृतप्राय अवस्था में देख कर मार्ग से चुपचाप चला जाता है और उससे सान्त्वना का एक शब्द भी नहीं बोलता और न उससे यही पूछता है कि 'भाई! तुम्हें क्या चाहिए? क्या मैं तुम्हें कुछ जल ला कर दूँ?'

कर्मयोगी को ध्यान और उपनिषद् अथवा अन्य ग्रन्थों के स्वाध्याय की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भगवान् की कृपा से उसे ज्ञान की पुस्तक से, अपने अन्तःकरण से ही सब ज्ञान प्राप्त होगा। परन्तु यदि वह प्रातःकाल कुछ समय जप, कीर्तन, ध्यान और धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय में भी लगाता है तो यह विशेष लाभदायी है। काम करते हुए भगवन्नाम का मानसिक जप भी कर सकता है। रात्रि में एक बार पुनः वह जप-ध्यान आदि के लिए बैठ सकता है।

निष्काम सेवा में रत कर्मयोगी को कभी-कभी उद्वेग और निराशा का सामना करना पड़ेगा; परन्तु उसे वीरतापूर्वक आगे बढ़ते रहना चाहिए। उसे अपनी कर्तव्यनिष्ठा में विश्वास रखना चाहिए। उसकी निष्कपटता के परिणाम-स्वरूप सारी कठिनाइयाँ उसकी सहायक बन जायेंगी; क्योंकि भगवान् स्वयं रहस्यमय ढंग से उसके कार्य में उसकी सहायता करेंगे और उसे सहारा देंगे। आत्मोत्सर्ग करने वाले सभी कर्मयोगियों का सदा यह अनुभव रहा है। अतः साहस और भगवान् में विश्वास, यह आपके संकेत-शब्द हों।

कर्मयोग का अभ्यास भगवद्-भक्ति के विकास और वेदान्त की एकता के अनुभव करने का निश्चित साधन है। कर्मयोग का अभ्यास किये बिना सैकड़ों जन्मों में भी भक्ति अथवा ज्ञान की प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती। कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञान-ये प्रेम के अविकसित रूप हैं। सेवा प्रेम का प्रकट रूप है। प्रेम का सच्चा प्रकटन शब्दों से नहीं, वरन् कर्म से होता है। कर्मयोग

सच्चा भक्तियोग और ज्ञानयोग बन जाता है। कर्मयोग का पुष्प भक्ति और ज्ञान में विकसित होता है।

कर्मयोग सर्वश्रेष्ठ योग है। यह आपको भगवद्-साक्षात्कार के लिए शीघ्र ही समर्थ बनाता है। राजा जनक एक प्रबल कर्मयोगी थे। महात्मा गान्धी आदि महापुरुषों ने कर्मयोग द्वारा ही अपने को महान् बनाया।

स्कूल तथा कालेज के सभी विद्यार्थी ऐम्बुलेंस कोर में सम्मिलित हों ! अपने को शुद्ध और उन्नत बनाने के लिए यहाँ आपके लिए विशाल क्षेत्र है। कर्मयोग की कला को सीखिए। कर्मफल की कभी आशा न रखिए। कर्तापन की भावना छोड़ दीजिए। प्रभु के हाथ के निमित्त बन कर रहिए। अपने प्रत्येक कर्म को भगवान् की पूजा के रूप में अर्पित कर दीजिए। सभी चेहरों में भगवान् के दर्शन कीजिए। सदा 'श्रीराम' का मानसिक जप कीजिए। अनुभव कीजिए कि सारा संसार भगवान् का व्यक्त रूप है।

संस्थापक की जय हो! निष्काम कार्यकर्ताओं की जय हो! आप सब निष्काम सेवा, हरि-नाम-कीर्तन तथा कर्तव्यपरायणता, समदृष्टि, मानसिक सन्तुलन और आत्मभाव के विकास से शाश्वत, अन्तर्वासी अमर आत्मा में आनन्द उपभोग करें!

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

६. सेवा उन्नत बनाती है

परम भाग्यशाली आत्माओ !

आप लोगों के सम्मुख बोलने का यह अवसर प्राप्त कर मुझे आज अतीव हर्ष हो रहा है। मैं आप लोगों को संसार के भविष्य का संरक्षक मानता हूँ। आने वाली पीढ़ियों और जातियों की उन्नति और कल्याण आप पर ही निर्भर करता है। अतः आप सबको सच्चरित्रवान् आदर्श व्यक्ति के रूप में बढ़ते हुए देखने की मेरी हार्दिक कामना है। मैं सबको इस संसार में सत्य और पवित्रता के दिव्य जीवन के सक्रिय व्याख्याता के रूप में देखना चाहता हूँ।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने के लिए तथा उसे उन्नत बनाने के लिए निष्काम सेवा एक बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधना से सम्भव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती, आपके अन्दर साहस भरती तथा तत्काल ही आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए निष्काम सेवा निश्चय ही बहुत आवश्यक है। जीवन की सफलता के प्राप्त्यर्थ आप लोग निश्चय ही ठीक दिशा में प्रयास कर रह रहे हैं।

इन सद्‌गुणों का अर्जन किये बिना ही साधक ध्यान करने बैठ जाते हैं। वे सच्चे ध्यानयोगी बनना चाहते हैं और एकान्तवास का आश्रय लेते हैं। वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में खेदजनक रूप से असफल रहते हैं; क्योंकि उन्होंने उन गुणों का अर्जन नहीं किया है जिनसे हृदय कोमल और शुद्ध

बनता है तथा मन एकाग्र और स्थिर होता है। वे आरम्भ में किसी प्रकार का उग्र ध्यान करते हैं; परन्तु छह महीने में ही वे तामसी बन जाते हैं। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ बन जाते हैं। अब वे न तो ध्यान कर सकते हैं और न कर्मयोग ही। वे इस लक्ष्य को तो खो बैठते हैं और उधर भी असफल रहते हैं। 'दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। वे शोक को प्राप्त होते हैं। उन्होंने यह जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर डाला। यह निश्चय ही बहुत शोचनीय है।

जो व्यक्ति संसार की सेवा करता है, वह वास्तव में अपनी ही सेवा करता है। जो दूसरों की सहायता करता है, वह अपनी ही सहायता करता है। यह महत्त्वपूर्ण बात है। अतः जब आप किसी दूसरे मनुष्य की अथवा स्वदेश की सेवा करें तो यही भावना बनाये रखें कि भगवान् ने आपको सेवा के द्वारा उन्नति करने और अपने को सुधारने का अमूल्य अवसर प्रदान किया है। जो मनुष्य आपको सेवा करने का अवसर प्रदान करता है, उसके प्रति कृतज्ञ बनिए।

जब दूसरों की भलाई करना मनुष्य-जीवन का अंग बन जाता है, तब जरा-सी भी स्वार्थ-भावना नहीं रहती। वह दूसरों की सेवा और भलाई करके बड़ा प्रसन्न होता है। उग्र निष्काम सेवा में एक अपूर्व आनन्द मिलता है। निष्काम सेवा करने से उसको आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

निष्काम कर्मयोगी सबको भगवान् का विराट्-रूप समझता है। अतः उसकी दृष्टि में समस्त सेवाएँ सर्वव्यापी भगवान् की निरन्तर पूजा हैं। भगवान् की सर्वव्यापकता की भावना जाग्रत होने के कारण वह एक अनिर्वचनीय अनुपम सुख का अनुभव करता है। एक चक्र से दूसरे चक्र की ओर प्रगति करने पर हठयोगी को, भाव-समाधि के प्राप्त होने पर भक्त को तथा निदिध्यासन के समय में वेदान्ती को जो आनन्द प्राप्त होता है, वही आनन्द निष्काम कर्मयोगी को मिलता है।

राजयोगी जिन सिद्धियों को प्राप्त करता है, कर्मयोगी उनको प्राप्त करने की चिन्ता नहीं करता, क्योंकि उसके लिए तो सर्वत्र आनन्दमय प्रभु ही विराजमान हैं। यहाँ न तो कोई प्रदर्शन करने वाला है और न कोई उनकी प्रशंसा करने वाला ही। मानवता अथवा भगवान् के विराट् रूप की सतत प्रेमपूर्ण सेवा के द्वारा जो दृष्टि प्राप्त होती है, उसी में वह आत्म-विभोर रहता है। यह आनन्द निश्चित है। यह सभी निष्काम कर्मयोगियों का पुरस्कार है।

कर्मयोग सर्वश्रेष्ठ योग है। यह आपको भगवद्-साक्षात्कार के लिए शीघ्र ही समर्थ बनाता है। राजा जनक एक प्रबल कर्मयोगी थे। महात्मा गान्धी आदि महापुरुषों ने कर्मयोग के द्वारा ही अपने को महान् बनाया।

हे अमृत सन्तान! सतर्क, चपल, सहानुभूतिपूर्ण, आज्ञाकारी, नम्र और सहिष्णु बनो। अपने से बड़ों की आज्ञा का पालन करो। कटु वाणी कभी न बोलो। निष्काम सेवा तथा आत्म-त्याग की भावना का अधिकतम विकास करो। कर्म पूजा ही है। यह भाव रखो कि आप भगवान् की सेवा कर रहे हैं। इससे आपका हृदय शुद्ध बनेगा और शाश्वत आनन्द अथवा भगवद्-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी।

संस्थापक की जय हो ! निष्काम कर्मयोग की जय हो! आप सब निष्काम सेवा, हरि-नाम के कीर्तन तथा कर्तव्यपरायणता, समदृष्टि, मानसिक सन्तुलन और आत्म-भाव के विकास से शाश्वत अन्तर्वासी अमर आत्मा में आनन्द उपभोग करें!

७. कर्मयोग की महिमा

व्यक्ति को उच्च पद की ओर प्रेरित करने तथा उसे उन्नत बनाने में निष्काम सेवा सबसे बड़ी शक्ति है। यह आपकी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करती है। ऐसा अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं है। यह आपके चरित्र को दिव्य बनाती, आपके अन्दर साहस भरती तथा तत्काल ही आध्यात्मिक जागरण लाती है। संसार के नवयुवकों के शारीरिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए निष्काम सेवा निश्चित ही बहुत आवश्यक है।

यह संसार प्रभु का ही एक रूप है; क्योंकि इसकी रचना, इसका पालन और संहार भगवान् से ही होते हैं। कानों की बालियाँ, बाजूबन्द-ये सब स्वर्ण के अतिरिक्त और क्या हैं? इसी भाँति यह नाम-रूप-मय संसार भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सारे रूप भगवान् की ही विभूतियाँ हैं। यदि आप इसे निरन्तर स्मरण रखें तो आपको एक नया दृष्टिकोण मिल जायेगा। आप राग-द्वेष से रहित हो जायेंगे। विराट् की पूजा के द्वारा आपको आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो जायेगा।

जब आप भगवान् को भुला देते हैं, तभी आप भूलें करते हैं। जब आपको उनकी उपस्थिति का स्मरण नहीं रहता, तभी आप कष्ट और शोक अनुभव करते हैं। यदि आप उनकी उपस्थिति का सतत अनुभव करने का प्रयास करें, तो आपके सारे कष्ट और कठिनाइयाँ इस प्रकार दूर हो जायेंगी जैसे अरुणोदय-काल में कुहेलिका नहीं ठहरती। यदि प्रारम्भ में स्मरण की धारा टूट भी जाये, तो चिन्ता नहीं। नियमित अभ्यास से यह धारा निरवच्छिन्न बन जायेगी।

कोई भी व्यक्ति चौबीस घण्टे ध्यान नहीं कर सकता है। अवकाश के समय मन को संलग्न बनाये रखने के लिए किसी-न-किसी प्रकार का काम आवश्यक है। उचित भाव से किया गया काम भगवान् की पूजा ही है।

प्रत्येक व्यापारी अथवा व्यवसायी अपने व्यावसायिक जीवन में रहते हुए भी भगवद्-साक्षात्कार कर सकता है। बहुत से सन्त हुए जिन्होंने मोची का काम करते हुए भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त किया। एक मांस-विक्रेता ने भी भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त किया। उसने एक योगी को भी आध्यात्मिक ज्ञान दिया।

योगी जिन सिद्धियों को प्राप्त करता है, कर्मयोगी उनको प्राप्त करने की चिन्ता नहीं करता; क्योंकि उसके लिए तो सर्वत्र आनन्दमय प्रभु ही विराजमान् हैं। यहाँ न तो कोई प्रदर्शन करने वाला है और न कोई उन प्रदर्शनों की प्रशंसा करने वाला ही। मानवता अथवा भगवान् के विराट् रूप की सतत प्रेमपूर्ण सेवा के द्वारा जो दृष्टि प्राप्त की है, उसी में वह आत्म-विभोर रहता है। यह आनन्द निश्चित है। यह सभी निष्काम कर्मयोगियों का पुरस्कार है।

आप सभी कर्मयोग के अभ्यास द्वारा प्रखर योगी के रूप में विभासित हों! आप शाश्वत आनन्द का उपभोग करें!

८. दिव्य सन्देश

भाग्यशाली अमर सन्तान !

आप भारत की तथा समस्त विश्व की भावी आशा हैं। सुनियमित जीवन यापन कीजिए। यही आध्यात्मिक शक्ति, जीवन में सफलता तथा शाश्वत आनन्द का आधार है। सदा साहसी और प्रसन्न रहिए। जप, ध्यान और प्रार्थना द्वारा अन्दर से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कीजिए। अपने माता, पिता तथा गुरु की श्रद्धा और भक्ति से सेवा कीजिए। श्रुति कहती है : "**मातृदेवो भव**, **पितृदेवो भव**, **आचार्यदेवो भव।**"

शास्त्र और भगवान् के नाम में श्रद्धा रखिए! नित्य सन्ध्योपासना कीजिए। भगवान् के नाम का गायन कीजिए। जीवन के लक्ष्य (भगवद्-साक्षात्कार) पर ध्यान करना चाहिए तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। अपने भौतिक अभ्युदय की कभी भी अवहेलना न कीजिए। समाज की सेवा कीजिए। निर्धन और रोगी की आत्म-भाव से सेवा कीजिए। प्रत्येक परिस्थिति में सच बोलिए। मन, वाणी अथवा कर्म से किसी प्राणी को आघात न पहुँचाइए। अपने आचार और व्यवहार में आदर्श बनिए।

आप सब अभ्युदय को प्राप्त करें!

आप सब इसी जीवन में भगवद्-साक्षात्कार प्राप्त करें!

९. औपनिषदिक संस्कृति

आचार्य के निरीक्षण में शिक्षा समाप्त कर लेने पर पूर्वकाल में विद्यार्थियों को जो अन्तिम उपदेश दिया जाता था, वह यहाँ दिया जा रहा है। यह वर्तमान काल के दीक्षान्त भाषण के समान है जो कि विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त करने पर विद्यार्थियों को उनके पदक प्रदान करने के अवसर पर दिया जाता है।

वेदाध्ययन कराने के अनन्तर आचार्य शिष्य को उपदेश देता है-"सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। वेदों के स्वाध्याय से प्रमाद न करो। आचार्य के लिए अभीष्ट धन दे कर (उनकी आज्ञा से स्त्री-परिग्रह करो और) सन्तान-परम्परा का छेदन न करो। सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिए। धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिए। कुशल (कल्याणकारी) कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिए। मांगलिक कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिए। स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिए।

"देव-कार्य और पितृ-कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता को देवता समझो (**मातृदेवो भव**)। पिता को देवता समझो (**पितृदेवो भव**)। आचार्य को देवता समझो (**आचार्यदेवो भव**)। अतिथि को देवता समझो (**अतिथिदेवो भव**)। जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिए, दूसरों का नहीं। हमारे जो शुभ आचरण हैं, तुम्हें उन्हीं की उपासना करनी चाहिए, दूसरे प्रकार के कर्मों की नहीं।

"जो कोई हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, आसनादि के द्वारा तुम्हें उनके श्रम को दूर करना चाहिए।

"श्रद्धापूर्वक देना चाहिए। प्रचुरता से देना चाहिए। नम्रतापूर्वक देना चाहिए। सहानुभूतिपूर्वक देना चाहिए।

"यदि तुम्हें कर्म या आचार के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो तो वहाँ जो विचारशील, कर्म में नियुक्त, स्वेच्छा से कर्मपरायण, सरलमति एवं धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, उस सम्बन्ध में जैसा व्यवहार करें वैसा ही तुम भी करो।

"यह आदेश है। यह उपदेश है। यह वेद का रहस्य है। यह (ईश्वर की) आज्ञा है। ऐसा ही आचरण करना चाहिए। इसी प्रकार तुम्हें उपासना करनी चाहिए।"

१०. विद्यार्थियों को सदुपदेश

(१)

माता-पिता और बड़ों जय जय राम
का आदर करो सीताराम
माता-पिता और गुरु को जय जय राम
नित नमस्कार करो सीताराम
माता-पिता और गुरु की जय जय राम
आज्ञा मानो सीताराम
आत्म-बलिदान से जय जय राम
आज्ञा-पालन श्रेष्ठ है सीताराम
श्रुति कहती हैं जय जय राम
मातृदेवो भव सीताराम
पितृदेवो भव जय जय राम
आचार्यदेवो भव सीताराम
अतिथिदेवो भव जय जय राम
माता को देवता समझो जय जय राम
पिता को देवता समझो सीताराम
आचार्य को देवता समझो जय जय राम
अतिथि को देवता समझो सीताराम
माता-पिता जय जय राम
परम प्रभु के सीताराम
साक्षात् रूप हैं जय जय राम
उनकी पूजा करो सीताराम
यह भौतिक शरीर जय जय राम

माता पिता ने दिया है	सीताराम
भगवद्-साक्षात्कार का	जय जय राम
और जीवन की सफलता का	सीताराम
यह उपकरण है	जय जय राम
तुम्हारे परिपालन को	सीताराम
माँ ने अपना जीवन दिया है	जय जय राम
सैकड़ों जन्मों में भी	जय जय राम
तुम उऋण नहीं हो सकते	सीताराम
अपने पिता दशरथ के	जय जय राम
सोचो, राम कितने भक्त थे	सीताराम
उनकी आज्ञा मान कर	जय जय राम
वन में निवास किया	सीताराम
भरत तुल्य बनो	जय जय राम
भ्राताओं से प्रेम करो	सीताराम
ज्येष्ठ भ्राता	जय जय राम
पिता तुल्य है	सीताराम
भाई से मत झगड़ो	जय जय राम
पिता से मत झगड़ो	सीताराम
सम्पत्ति-विभाजन हेतु	जय जय राम
न्यायालय मत जाओ	सीताराम
यदि अभियोग चलाते हो	जय जय राम
तुम नीच, अभागे हो	सीताराम
तुम महापापी हो	जय जय राम
तुम दुर्जन हो	सीताराम
पिता बीमार हों तो	जय जय राम
उनके चरण दबाओ	सीताराम
नित्य उनके वस्त्र धोओ	जय जय राम
इससे चित्त शुद्ध होगा	सीताराम

(२)

सादे वस्त्र पहनो	जय जय राम
सादा भोजन करो	सीताराम
भद्र बनो, नम्र बनो	जय जय राम
शान्त बनो, दयालु बनो	सीताराम
भले बनो, भला करो	जय जय राम
पोशाक और फैशन में	सीताराम
बाल कटवाने में	जय जय राम
तथा पतलून और हैट में	सीताराम
दूसरों की नकल मत करो	जय जय राम
धूम्रपान मत करो	जय जय राम
मद्यपान मत करो	सीताराम
सिनेमा देखने	जय जय राम

कभी मत जाओ सीताराम
उपन्यास आदि जय जय राम
कभी मत पढ़ो सीताराम
आपकी कामुक वृत्ति को जय जय राम
यह उत्तेजित करेगा सीताराम
इसकी आदत डालो जय जय राम
चार बजे प्रातः उठो सीताराम
पहले कुछ प्रार्थना करो जय जय राम
फिर कुछ स्वाध्याय करो सीताराम
प्रातःकाल में जय जय राम
जो तुम पढ़ोगे सीताराम
उसका प्रभाव गम्भीर होगा जय जय राम
अधिक धारणा होगी सीताराम
गीता, रामायण जय जय राम
अथवा भागवत सीताराम
नित्यप्रति पढ़ो जय जय राम
नियमित सन्ध्या करो सीताराम
संस्कृत पढ़ाे जय जय राम
घर पर कीर्तन करो सीताराम
जप भी करो जय जय राम
सफल होगे सीताराम
स्वास्थ्य का ध्यान रखो जय जय राम
खुली वायु में दौड़ो सीताराम
या योगासन करो जय जय राम
दूर तक टहलो जय जय राम
दण्ड-बैठक करो सीताराम
टेनिस खेलो हाकी, फुटबाल आदि जय जय राम
मैदानी खेल खेलो सीताराम
जब तुम खेल खेलो जय जय राम
किसी को धोखा मत दो सीताराम
सच्चे और न्यायी बनो जय जय राम
और सरल बनो सीताराम

(३)

सभी कार्यों में जय जय राम
विद्या अध्ययन में सीताराम
और सभी विषयों में जय जय राम
समयनिष्ठ बनो सीताराम
अनुकूलता का विकास करो जय जय राम
परिश्रमी बनो सीताराम

आलस्य और प्रमाद को जय जय राम
पराजित करो सीताराम
प्राथमिक चिकित्सा सीखो जय जय राम
मानवता की सेवा में सीताराम
चित्त-शुद्धि में जय जय राम
यह सहायक होगी सीताराम
रोगी, दुःखी और निर्धन की जय जय राम
सेवा में तत्पर रहो सीताराम
निष्काम सेवा की जय जय राम
भावना विकसित करो सीताराम
दीनों को ठुकराओ मत जय जय राम
उनकी सेवा करो, उनसे प्रेम करो सीताराम
इससे करुणा का विकास होगा जय जय राम
और ईश-कृपा की प्राप्ति होगी सीताराम
शिष्ट बनो, विनीत बनो जय जय राम
उद्धत मत बनो सीताराम
सौम्य बनो, सुशील बनो जय जय राम
साहसी और प्रफुल्ल बनो सीताराम
सभी परिस्थितियों में जय जय राम
सदा सच बोलो सीताराम
वीर्य की रक्षा करो जय जय राम
ब्रह्मचर्य का पालन करो सीताराम
वीर्य-संरक्षण से जय जय राम
मनोबल विकसित होगा सीताराम
स्मरण-शक्ति की प्राप्ति होगी जय जय राम
वीर्य महान् शक्ति है सीताराम
भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति जय जय राम
इससे होगी सीताराम
चालीस बूँद रुधिर का जय जय राम
एक बूँद वीर्य है सीताराम
बुरी आदतों ने जय जय राम
बहुतों का विनाश किया है सीताराम
शक्ति, दृष्टि और स्मृति जय जय राम
उनकी नष्ट हो गयी है सीताराम
नीच आदतों का त्याग करो जय जय राम
सतर्क बनो, सजग बनो सीताराम
पवित्र बनो, शुद्ध बनो जय जय राम
और सुस्वास्थ्य प्राप्त करो सीताराम
कुसंगति का त्याग करो जय जय राम
दुर्व्यसन का त्याग करो सीताराम
शुचिता का विकास करो जय जय राम

अहिंसा का अभ्यास करो सीताराम
जीवन में कुछ सूत्र अपनाओ जय जय राम
और उन सूत्रों के अनुकूल सीताराम
तुम अपना जीवन बिताओ जय जय राम
इससे चरित्र का विकास होगा सीताराम
ताश मत खेलो जय जय राम
जुआ मत खेलो सीताराम
तुम सब-कुछ खो दोगे जय जय राम
यह विनाश करेगा सीताराम
सदाचार के बिना जय जय राम
और सच्चरित्रता के अभाव में सीताराम
तुम्हारा जीवन व्यर्थ है जय जय राम
तुम मृतक-समान हो सीताराम
ईश्वर और शास्त्रों में जय जय राम
श्रद्धा बढ़ाओ सीताराम
सत्संग करो जय जय राम
मन्दिर जाओ सीताराम
पूजा करो जय जय राम
भक्ति बढ़ाओ सीताराम
साधु और संन्यासी की जय जय राम
निन्दा मत करो सीताराम
चुगली मत करो जय जय राम
गाली मत दो सीताराम
दूसरे धर्म और मत पर जय जय राम
प्रहार मत करो सीताराम
सदा सहनशील बनो जय जय राम
सब धर्मों का मान करो सीताराम
पवित्र भूमि में जन्म लेना जय जय राम
सौभाग्य की बात है सीताराम
अपनी संस्कृति के प्रति सच्चे बनो जय जय राम
यह महान् और परमोत्कृष्ट संस्कृति है सीताराम
अपने मित्र या गुरु से जय जय राम
या किसी दूसरे से सीताराम
जब कभी मिलो जय जय राम
कहो, 'ॐ नमो नारायणाय' सीताराम
या कहो, 'जय राम जी की' जय जय राम
या कहो, 'जय श्रीकृष्ण की' सीताराम
या कहो, 'ॐ नमः शिवाय' जय जय राम
या कहो, 'हरि ॐ, हरि ॐ' सीताराम
'गुड मार्निंग सर' कहने की जय जय राम
आदत छोड़ो सीताराम

यह नकल बुरी है जय जय राम
पूर्वोक्त अभिवादन सीतराम
सभी प्राणियों के अन्दर जय जय राम
प्रभु के दर्शन में सीतराम
सहायक होगा जय जय राम
और इससे प्रभु का सीतराम
सतत स्मरण होगा जय जय राम
यह साधना भी है सीतराम
जब तक जीवन अनिश्चित हो जय जय राम
और अपना जीविकोपार्जन सीतराम
जब तक न कर सको जय जय राम
तब तक अविवाहित रहो सीतराम
अपना पेशा चुनने में जय जय राम
सावधान रहो सीताराम
वकील अधिवक्ता जय जय राम
कभी मत बनो सीताराम
मिथ्या भाषण से जय जय राम
आत्मा को मारोगे सीताराम
आध्यात्मिक पथ में जय जय राम
प्रगति न कर सकोगे सीताराम
पुलिस आफिसर जय जय राम
कभी मत बनो सीताराम
आत्मिक उन्नति जय जय राम
प्राप्त न कर सकोगे सीताराम
प्राध्यापक बनो जय जय राम
या डाक्टर बनो सीताराम
यह उत्तम वृत्ति है जय जय राम
स्वाध्याय हेतु सीताराम
और योगाभ्यास हेतु जय जय राम
अवकाश मिलेगा सीताराम
जब तुम विवाह करो जय जय राम
स्त्रिजित मत बनो सीताराम
साध्वी माँ से जय जय राम
दुर्व्यवहार मत करो सीताराम
संयुक्त परिवार रखने का जय जय राम
सदा प्रयास करो सीताराम
अधिक धन-संचय में जय जय राम
यह सहायक होगा सीताराम
माता की आज्ञा पालन करना जय जय राम
और बहन भाइयों के साथ सीताराम
मिल कर रहना जय जय राम

पत्नी को सिखलाओ	सीताराम
सभी नारियों में	जय जय राम
मातृभाव बढ़ाओ	सीताराम
अपनी ही माँ	जय जय राम
उनको समझो	सीताराम
स्त्री-जाति में	जय जय राम
दुर्गा माँ के दर्शन करो	सीताराम
शुचिता के विकास में	जय जय राम
कुविचार के दमन में	सीताराम
काम के नियन्त्रण में	जय जय राम
और शक्ति-रूप में-	सीताराम
भगवद्दर्शन में	जय जय राम
यह सहायक होगा	सीताराम

११. अर्जनीय गुण

(इसकी एक प्रतिलिपि तैयार कर लीजिए और उसे अपने कमरे में किसी प्रमुख स्थान पर लटका दीजिए।)

(१)

अनुशासन	अविचल भक्ति
आज्ञाकारिता	आत्मसंयम व आत्मोत्सर्ग
ईश्वर की सत्ता का सर्वत्र भान	ईश्वर में अविचल श्रद्धा
उदारता	उद्योगशीलता
क्षमा	चित्तशुद्धि
जिज्ञासा	त्याग
दानशीलता	दीर्घ प्रयत्न
धैर्य	नम्रता
निर्भयता	निष्कपटता
ब्रह्मचर्य	भद्रता
मन का सन्तुलन	मनोबल
मानसिक स्थैर्य	राग और फल की कामना
विषयों के प्रति अनासक्ति	से रहित हो कर्म करना
शान्त और प्रसन्न मुद्रा	शान्ति
सत्यशीलता	सरलता
सहनशीलता	सहिष्णुता
साम्यावस्था	साहस
सेवाभाव	स्पष्टवादिता

(२)

अनुराग
अपमान और हानि सहना
अलोभ
अस्तेय
आत्मनिग्रह
ईर्ष्या और अहंकार का अभाव
कृपालुता
ज्ञान, भक्ति और वैराग्य
की दृढ़ता
तेजस्विता
दातापन
दूसरों की प्रशंसा
धार्मिकता
निद्रा को कम करना
निर्दोषिता
निश्चलता
पर अपवाद विमुखता
प्रशंसात्मिका बुद्धि
भूतदया
मन, वाणी और कर्म से किसी को
हानि न पहुँचाना
मुदिता
जीवदया
विशुद्धता
वैराग्य
शील
शौर्य
सच्चाई
सत्यपालन
सन्तोष
सहानुभूति
साहसिक कार्य
स्थैर्य

अपनी भूल और कमजोरी को स्वीकार करना
अलोलुपता
अहिंसा
आत्मसंयम
कुसंग त्याग
क्षमाशीलता
तप
तृप्ति
दयालुता
दीर्घसूत्रता का अभाव
दृढ़ता
धैर्य
नियमितता
निर्भीकता
निष्काम सेवा
परोपकारिता
भाव-सहित रोगियों की सेवा
मन का समत्व
महानुभावता
मित और मधुर भाषण
जनमत के प्रति उदासीनता
विचार
वीरता
शिष्टता
शुचिता
संयम
सज्जनता
सद्भावना
सभी विषयों में अनुशीलन
साधन पूर्णता
स्नेह
स्वाध्याय

१२. त्याज्य दुर्गुण

(इसकी एक प्रतिलिपि तैयार कर लीजिए और उसे अपने कमरे में किसी प्रमुख स्थान में लटका दीजिए।)

(१)

अपवादिता	अहंकार
अहम्मन्यता	आलस्य
आलोचना	आसक्ति
ईर्ष्या	उदासी
काम	कामना
कुदृष्टि	कुविचार और दुर्व्यसन
कृपणता	क्रूरता
क्रोध	घृणा
दम्भ	दर्प
दुर्जनता	दुहरी चाल
दौर्मनस्य	निरीश्वरता
निर्दयता	नृशंसता
परुष वाणी	पिशुनता
पेटूपन	प्रतिहिंसा
प्रवंचना	मद
मात्सर्य	मिथ्याभाषण
मूढ़ता	लोकापवाद
लोलुपता	स्वार्थ
हठ	

(२)

अन्धविश्वास	अदूरदर्शिता
अनर्थक चिन्ता	अनाप-शनाप बोलना
अन्याय	अपमान
अपयश	अपशब्द
अवहेलना	अशिष्टता
अश्लीलता	आडम्बर
आत्मश्लाघा	आत्माभिमान
उत्पीड़न	उपन्यास-पठन
कलहप्रियता	कला और शक्ति का प्रदर्शन
कूटनीति	क्षुद्रता
खिन्नता	चंचलता
चिड़चिड़ापन	छल
छिद्रान्वेषण	छोटों के प्रति दुर्व्यवहार
जीव-हिंसा	जुआ
झगड़ालू पन	दर्प
दिवा-निद्रा	दीर्घसूत्रता
दुर्व्यवहार	दोषदृष्टि
द्वेष	धूम्रपान

धूर्तता
धृष्टता
निराशा
निरुद्योगता
परनिन्दा
पाण्डित्य
प्रगल्भता
प्रतिवाद
प्रतिशोध
प्रमाद
भावुकता
भ्रमणशीलता
मदिरापान
मनोद्वेग
मानसिक अस्थैर्य
मिथ्याभिमान
रुक्षता
लघु चौर्य
लोभ
वितण्डावाद
विरोध
विवाद
व्यग्रता
शठता
शत्रुता
समय नष्ट करना
स्तब्धता
हवाई कीले बनाना